घाणेराव के मेड़तिया राठौड़

[घाणेराव ठिकाने का इतिहास]



लेखक :
डा. देवीलाल पालीवाल

Meratia Rathors of Ghanerao

by

Dr. Devilal Paliwal

•

प्रकाशक :
ठाकुर लक्ष्मणसिंह
२-ए, नया फतहपुरा
उदयपुर (राजस्थान)

•

प्रथम संस्करण, १९८० ई०

मूल्य : तीस रुपये

•

मुद्रक :
श्रीगीता प्रिन्टिङ्ग प्रेस,
उदयपुर (राजस्थान)

अनुक्रम

प्राक्कथन

राजस्थान की सुप्रसिद्ध मेडतिया राठौड वश शाखा के घाणेराव ठाकुर परिवार का इतिहास, इतिहास प्रेमियो एव पाठको के सन्मुख प्रस्तुत है ।

ठाकुर साहब लक्ष्मणसिंहजी के इतिहास प्रेम तथा उनकी वश गौरव भावना ने इस इतिहास को तैयार करने के लिये प्रेरणा एव प्रोत्साहन प्रदान किया । वस्तुत उनकी अनवरत रुचि, सहयोग एव सहायता के कारण ही यह कार्य सम्पन्न हुआ है ।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन से राजस्थान के तत्कालीन इतिहास की कई घटनाओ पर नया प्रकाश पडा है तथा मेवाड और मारवाड राज्यो के इतिहास तथा इन दोनो राज्यो के पारस्परिक सम्बन्धो की दृष्टि से कई नवीन तथ्य उद्घाटित हुए हैं, जो ऐतिहासिक शोध की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । घाणेराव ठिकाने की भौगोलिक और राजनैतिक स्थितियो तथा यहा के मेडतिया राठौड परिवार की शौर्य और नीतिज्ञता से पूर्ण ऐतिहासिक भूमिका ने पहिले मेवाड राज्य और बाद मे मारवाड राज्य के इतिहास पर निर्णायक प्रभाव डाला । इतना ही नही मेवाड और मारवाड राज्यो के सम्बन्धो को निश्चित करने मे भी समय समय पर घाणेराव ठाकुर परिवार ने निर्णायक भूमिका अदा की । इसलिये इन दोनो राज्यो के सबधों के अध्ययन की दृष्टि से भी यह ग्र थ महत्वपूर्ण सिद्ध होगा ।

घाणेराव ठिकाने मे सग्रहीत प्राचीन दस्तावेज और ख्यात आदि इस ग्रन्थ को तैयार करने मे प्रधान आधार सामग्री रहे हैं । इसके अतिरिक्त श्री नटनागर शोध सस्थान, सीतामऊ की श्रीरघुवीर लाइब्रेरी, प्राच्यविद्याप्रतिष्ठान पुस्तकालय, उदयपुर और साहित्य सस्थान, शोध पुस्तकालय, उदयपुर से भी ग्रन्थ के लिये उपयोगी सामग्री उपलब्ध हुई है । घाणेराव ठिकाने से सम्बन्धित प्राचीन चित्रो की फोटो प्रतिया नवलगढ (शेखावाटी) कु वर श्री सग्रामसिंह ने अपने सग्रहालय से प्रदान की । श्री सौभाग्यसिंह शेखावत, डॉ. ब्रजमोहन जावलिया, श्री रामवल्लभ सोमानी, डॉ मनोहरसिंह राणावत ने ग्रन्थ से सम्बन्धित आवश्यक शोध सामग्री उपलब्ध कराने मे सहयोग प्रदान किया । मैं सभी का हृदय से आभारी हू ।

दिनाङ्क 19 अक्टूबर, 1980
रविवार, विजयादशमी



भक्त शिरोमणि मीराबाई

आमुख

राजस्थान के इतिहास में घाणेराव का ठिकाना सुप्रसिद्ध रहा है। इस ठिकाने की स्थापना सन् 1606 ई मे मेवाड के महाराणा अमरसिंह प्रथम के काल म मेड़तिया राठौड़ ठाकुर गोपालसिंह (गोपालदास) द्वारा की गई थी। उक्त महाराणा द्वारा उनको कुंभलगढ और गोडवाड की रक्षा के दायित्व स्वरूप नाडोल का पट्टा दिया गया था। सन् 1949 म भूतपूर्व रियासतो के राजस्थान मे विलय के समय घाणेराव ठिकाना तत्कालीन मारवाड राज्य की प्रथम श्रेणी के ठिकाना म से था।

घाणेराव कस्बा तथा घाणेराव ठिकाना राजस्थान के इतिहास प्रसिद्ध गोडवाड प्रदेश म स्थित थे। गोडवाड भूभाग राजस्थान क उन इलाको मे से है जो अत्यन्त प्राचीन काल से भारतीय संस्कृति, साहित्य और कला की कर्मभूमि रहे। इस भू भाग के कई स्थान सैकडो वर्षों के इतिहास के अवशेष हैं। यहा अभी भी उपलब्ध प्राचीन दुर्गों, महलो, मन्दिरो आदि के अवशेष तथा उनमे उपलब्ध प्राचीन मूर्तिया, शिल्पकला के नमूने एव शिलालेख आदि स्वय अपनी दीर्घकालीन गाथा का मूक वर्णन करते हैं। इसी भाति प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थो मे इस प्रदेश के विभिन्न स्थलो, व्यक्तियों आदि के वर्णन मिलते हैं, अथवा इस प्रदेश मे ज्ञान-विज्ञान के ग्रन्थो के लिखे जाने का वृतान्त उपलब्ध होता है। 15 वी शती मे महाराणा कुम्भा के काल म निर्मित एव देश भर मे अपनी उत्कृष्ट शिल्प एव मूर्तिकला के लिए प्रसिद्ध राणकपुर का विशाल आदिनाथ का जैन मन्दिर इसी भू भाग मे स्थित है, जो गोडवाड के पाच जैन तीर्थों मे से है। अन्य चार हैं घाणेराव का मुछाला महावीर जैन मंदिर, तथा नाडलाई, नाडोल और वरकाणा के जैन मदिर। ये सभी लगभग पाच-सौ छ सौ साल प्राचीन शिल्पकला के उत्तम नमूने हैं। इसी प्रकार यहा घाणेराव, नाडोल, सादडी, नाडलाई, वर-

नाणा, हथू डी[1], बेलार, भड्ूद, वेहुडा, मादडो, कोरटा[2], वामनेरा, सांडेराव, नाणा, देसूरी, वाली आदि कई ऐसे कस्बे हैं जो अत्यन्त प्राचीन काल से भारतीय सभ्यता के उत्थान-पतन तथा उथल-पुथल के सैकडो वर्षो के दौरान जीवित चले आये है, और जहा न केवल दुर्गों, महलो, मदिरों आदि के अनगिनत खडहर बिखरे पडे हैं, अपितु बडी मात्रा में शिव, विष्णु, माता, भैरव आदि के मदिर अभी भी विद्यमान हैं।[3] प्राचीन काल से ही इस इलाके में जैन धर्म एव एव वैष्णव धर्म का व्यापक प्रभाव रहा। चौहान काल मे शैवधर्म का इस भूभाग में व्यापक प्रसार हुआ। पुरातत्ववेत्ताओ की शोध-खोज से यहा के मदिरो मे उप-लब्ध चौहान काल के वि स 1017 (960 ई) तक के प्राचीन शिलालेख खोज निकाले गये है। चौहान काल के दसवी-ग्यारहवी शताब्दी के छोटे बडे दुर्गों एव महलो के खडहर घाणेराव, नाडोल, सेवाडी आदि कई स्थलो पर आज भी देखने को मिलते हैं।

यदि ऐतिहासिक दृष्टि से अवलोकन करें तो पता चलता है कि गोडवाड प्रदेश प्राचीन काल मे ईसा की दसवी-ग्यारहवी शताब्दी तक 'सप्तशत' जनपद कहलाता था। इसके उत्तर और पूर्व मे सपादलक्ष, दक्षिण म मेदपाट तथा पश्चिम मे गूर्जरत्ना जनपद फैले हुए थे। यह भूभाग अधिकाशत केन्द्रीय राज्यो एव साम्राज्यो का अग बना रहा और केन्द्रीय स्तर पर राजनैतिक परिवर्तनो के साथ इस प्रदेश के अधिपति भी प्राय बदलते रहे। वि० स० 1024 (967 ई०) मे इतिहास मे प्रथम बार सप्तशत मे एक स्वतत्र राज्य कायम हुआ था, जबकि शाकभरी शाखा के चौहान सामन्त लक्ष्मण ने नाडोल राज्य के नाम से अपनी स्वतत्र सत्ता कायम की। यह समय विशाल प्रतिहार साम्राज्य का अवसान काल था और चौहान प्रतिहारो के सामत रहे थे। ईसा की ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दियो के काल मे सप्तशत जनपद चौहान शासको क

---

1. यह स्थान 11 वी शताब्दी मे राठोडो अथवा राष्ट्रकूटो की राजधानी रहा और यहा से राठोडो की हथू डिया अथवा हस्तिकु डी शाखा निकली।

2 इसके नाम से कोरटक जैन गच्छ शाखा निकली।

3 इनमे प्रमुख हैं-बाली (जहा से चौहानो की बालेचा शाखा निकली) का माता का मन्दिर, जिसमे वि स 1200 और 1216 के शिलालेख मिले हैं ' नाणा का महावीर स्वामी का जैन मदिर, जिसमे वि स 1017, 1203 और 1506 के शिलालेख मिले हैं लक्ष्मीनारायण का मन्दिर जिसमे 1314 का शिलालेख

आधिपत्य में कभी स्वतत्र राज्य के रूप मे स्थित रहा तो कभी सपादलक्ष के चौहान सम्राटो अथवा गूर्जरत्रा के चालुक्य राजाओ के अधीन स्वायत्त राज्य के रूप मे रहा। इस बात का उल्लेख मिलता है कि 1037 ई० मे अन्हिलवाडा और सोमनाथ की ओर प्रयाण करते समय महमूद गजनवी इस प्रदेश से गुजरा था और उसने नाडोल पर अधिकार कर लिया था। इसी भांति 1178 ई० मे गुजरात की ओर प्रस्थान करते समय मुहम्मद गौरी ने भी नाडोल पर अधिकार कर लिया था। किन्तु इन आक्रमणो के बाद चौहान अधिपतियों ने यहाँ पुन अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया था। किन्तु 1193 ई० मे नाडोल शासक कल्हण की मृत्यु के बाद सप्तशत का स्वतत्र अथवा स्वायत्त नाडोल राज्य समाप्त हो गया। इस बात का उल्लेख मिलता है कि नाडोल के शासक

मिला है, नीलकठ महादेव का मदिर जिसम 1237 क शिलालेख मिले हैं बेलार के शिव और जैन मदिर जिसम वि० स० 1265 का शिलालेख मिला है, भडूंद का सरस्वती का मदिर, जिसमे वि० स० 1202 का शिलालेख है, बेहडा गाव के सूर्य, विष्णु एव महावीर के मदिर, जहाँ महावीर की मूर्ति पर वि स 1144 का लेख है, भाटूंद की विष्णु के बुद्ध अवतार की मूर्ति, हथूंडी का राता महावीर का जैन मदिर, जिसमें वि स. 1053 का शिलालेख है, सेवाड़ी का 11 वी शताब्दी का जैन मदिर, यहाँ मूजा बालेचा के किले के अवशेष हैं, साडेराव का वि स 1221 के शिलालेख वाला महावीर स्वामी का मदिर, मेडी का वि स 1143 का शिलालेख वाला रिखवदेव का मदिर, नाणपेरा का सूर्य मदिर, सादडी के वराह, कपूरलिंग महादेव, जागेश्वर, भोलानाथ, लक्ष्मी एव चतुंभुज मदिर, यहा बावली मे ग्यारहवी शताब्दी से लगाकर महाराणा अमरसिंह प्रथम के काल के वि स 1654 तक के कई शिलालेख मिलते हैं, राणकपुर का विशाल चौमुखा आदिनाथ का मदिर एव सूर्य मदिर, जहा वि स 1496 का शिलालेख है, नारलाई के नेमीनाथ का जैन मदिर, तपेश्वर एव बैजनाथ महादेव के मदिर, यहा सोनगरे चौहानो के पहाडी किले के भग्नावशेष हैं, नाडोल का जैन मदिर एवं सोमेश्वर का महादेव मदिर जिसम विक्रम की बारहवी शताब्दी के शिलालेख हैं, यहा चौहान शासको द्वारा निर्मित किले और महलों के भग्नावशेष मौजूद हैं, वरकाणा का पार्श्वनाथ का मदिर तथा घाणेराव के विष्णु, शिव एव महावीर के मदिर (जिनका विस्तृत उल्लेख आगे किया जा रहा है)। ~

कीर्तिपाल ने जालोर मे अपनी सत्ता स्थापित की और नाडोल उसके अन्तर्गत चला गया। 1197 ई० मे जब कुतुबुद्दीन ऐबक आबू की ओर बढते हुए नाडोल आया तो उस समय उसका भव्य किला खाली पडा था।

बारहवी शताब्दी के अन्त मे नाडोल राज्य की समाप्ति के साथ ही इस प्रदेश के इतिहास ने नया मोड लिया। प्रारम्भ म इस इलाके पर आधिपत्य के लिये जालोर के चौहान राजाओ एव मेदपाट के गुहिल राजाओ के बीच प्रतिस्पर्द्धा रही।[1] बाद म गुहिल राजाओ और मारवाड प्रदेश के राठोड़ वश के राजाओ के बीच रही। किन्तु इसम कोई सन्देह नही है कि मेदपाट के गुहिल राज्य के विस्तार एव शक्तिशाली होने के बाद तेरहवी शताब्दी मे रावल जैत्रसिह के राज्यकाल से यह प्रदेश अधिकाशत मेदपाट अथवा मेवाड राज्य के अधीन रहा। अलाउद्दीन खिलजी द्वारा 1303 ई० मे चित्तौडगढ विजय के कुछ वर्ष बाद ही गुहिल वश के राणा हमीर[2] ने पुन चितौड पर अधिकार किया उस समय गोडवाड मेवाड के अधिकार मे था।[3] महाराणा मोकल (1421–1433 ई०) के काल तक मेवाड का प्रभुत्व गोडवाड से सपादलक्ष तक के बडे क्षेत्र पर कायम हो गया था, जो बाद मे मारवाड कहलाया। महाराणा कुभकर्ण (1433-1468 ई०) के शासन काल मे महाराणा ने

1 रावल समरसिह के आबू शिलालेख म उल्लेख है कि 'जैत्रसिह ने नडूल को जड से उखाड डाला।' इससे पूर्व नाडोल के चौहान शासक कीर्तिपाल ने मेवाड पर अधिकार कर लिया था। गुहिल रावल जैत्रसिह (1213–1261 ई०) ने कीर्तिपाल को मेवाड से बाहर निकाल दिया और नाडोल पर अधिकार कर लिया। कीर्तिपाल ने जालोर को अपने राज्य का केन्द्र बनाया। कीर्तिपाल के पौत्र जालोर शासक उदयसिह का नाडोल पर भी अधिकार रहा था। वह जैत्रसिह का समकालीन था। बाद मे उदयसिह की पौत्री और चाचिगदेव की पुत्री रुपादेवी का विवाह जैत्रसिह के पुत्र रावल तेजसिह के साथ सम्पन्न हुआ। (ओझा - उदयपुर राज्य का इतिहास भाग-1 पृ० 169)

2. हमीर ने सीसोदे से आकर चितौड पर अधिकार किया था। इसलिये मेवाड का गुहिल वश आगे सिसोदिया नाम से सम्बोधित किया गया।

3 वही ओझा–उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० 199

जब मंडोर राव जोधा को दिया और जोधा द्वारा जोधपुर अथवा मारवाड राज्य की स्थापना की गई, उस समय मारवाड और मेवाड राज्यो के बीच निश्चित भौगोलिक सीमा रेखा निश्चित की गई। परम्परा से यह प्रसिद्ध है कि मारवाड़-मेवाड राज्यो की सीमाएँ निश्चित करने के लिये निम्न आधार रखा गया—

आवला आवला मेवाड,
बबूल बबूल मारवाड।

बाद मे एक कवि ने मारवाड का इस भाति वर्णन किया है —

आकरा झोपडा, फोग री बाड़
बाजरा री रोटी, मौठ री दाल
देखो हो राजा तेरी मारवाड॥

इस आधार पर गोडवाड का उपजाऊ प्रदेश मेवाड राज्य की सीमा मे रहा। इस घटना के बाद पाच सौ वर्षों से अधिक काल तक यह सरसब्ज इलाका मेवाड राज्य के अधीन बना रहा। ई० 1771 मे मेवाड मे गृह-कलह के समय मेवाड के तत्कालीन महाराणा अडसी (अरिसिंह) ने मारवाड के महाराजा विजयसिंह की सहायता प्राप्त करने तथा कुम्भलगढ का क्षेत्र सुरक्षित रखने की दृष्टि से गोडवाड प्रदेश अस्थायी तौर पर कुछ शर्तों के साथ महाराजा विजयसिंह को दे दिया था। उसके बाद गोडवाड पुन. मेवाड राज्य मे वापस नही आया और वह मारवाड राज्य का अग बना रहा।

भूगोल

जैसा कि ऊपर कहा गया है, गोडवाड प्रदेश अरावली पर्वतमाला एव मारवाड के रेतीले प्रदेश के मध्य स्थित अत्यन्त हराभरा उपजाऊ मैदानी भूभाग है, जिसमें घाणेराव ठिकाना स्थित था। इस ठिकाने का प्रधान भाग 110° का कोण बनाता हुआ एक लकीर की भाति फैला हुआ था। ठिकाने के कुछ गाव प्रधान भाग से अलग पश्चिम, उत्तर और पूर्व भाग मे बिखरे हुए थे। ठिकाने का प्रधान कस्बा घाणेराव 25° 14 उत्तरी अक्षास तथा 73° 12 पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। यह कस्बा अरावली पर्वत की ऊची श्रेणियो की तलहटी मे तथा अरावली पर्वतमाला मे से मेवाड मे प्रवेश करने के मार्ग देसूरी दर्रे के मुँह के पास देसूरी कस्बे से चार मील दूर दक्षिण पूर्व मे स्थित है। देसूरी का पहाडी मार्ग इतिहास के कई युद्धों का साक्षी है। उत्तर से मेवाड के पर्वतीय भाग मे प्रवेश का यह

प्रधान मार्ग था जो अत्यन्त उबड-खावड, विकट, दुर्गम तथा वनीय था। मेवाड के महाराणाओ ने सदैव उत्तर के आक्रमणकारियो को इस मार्ग मे घुसने से रोकने का प्रबन्ध रखा और इसलिये मेवाड के इस उत्तरी द्वार तथा उसके निकट ऊचे पर्वत पर स्थित कुम्भलगढ की रक्षा का उत्तरदायित्व सदैव ही अत्यन्त विश्वसनीय और बहादुर व्यक्ति को दिया जाता था जो सामान्य काल मे सादडी अथवा देसूरी मे रहता था और वह गोडवाड प्रदेश के शासन प्रबन्ध को भी देखता था। अठारहवी शताब्दी मे जब यह दायित्व इतिहास प्रसिद्ध मेडतिया राठोड घराने के ठाकुर गोपालदास को दिया गया, तब से इस भूभाग का प्रधान स्थल घाणेराव हो गया। प्रसिद्ध दुर्ग कुम्भलमेर अथवा कुम्भलगढ घाणेराव से दक्षिण मे दुर्गम ऊची पर्वत चोटी पर स्थित है। दुर्ग के महल घाणेराव से साफ दिखाई पडते हैं और ऐसा प्रतीत होता है मानो ये महल नीचे के विस्तृत प्रदेश की रखवाली कर रहे हो।

घाणेराव मारवाड जक्शन से अहमदाबाद की ओर जाने वाली रेलवे लाइन के रानी स्टेशन से दक्षिण पूर्व मे 15 मील दूरी पर है। यहा से उदयपुर 110 मील दक्षिण पूर्व मे तथा जोधपुर उत्तर मे 80 मील दूरी पर है। इस भूभाग के अन्य प्रधान स्थल सादडी 4 मील दूर दक्षिण पश्चिम मे तथा बाली 12 मील दूर पश्चिम मे स्थित है। इतिहास प्रसिद्ध नाडोल उत्तर मे 10 मील दूरी पर है।

घाणेराव ठिकाना मारवाड राज्य का सर्वाधिक उपजाऊ भूभाग था जहा वर्षा अधिक होती है और खरीफ और रबी दोनो फसलें होती हैं। खरीफ फसल मे बाजरा, जवार, मोठ, तिल, मक्की, रुई तथा रबी मे गेहूँ, जौ, चना, सरसो प्रधान पैदावार है। यहाँ अरावली से निकलने वाले नालो, झरनो आदि की बहुतायत है। इस इलाके मे जगह जगह पर प्राचीन प्रकार की बनी हुई बावलिया बडी सख्या मे बनी हुई मिलती हैं। देसूरी और घाणेराव के बीच मे अरावली से निकलने वाली सूकरी नदी बहती है जो आगे जाकर लूनी नदी मे मिलती है।

घाणेराव और देसूरी के निकट अरावली के पश्चिमी ढाल पर (जिसमे होकर देसूरी का पर्वतीय मार्ग-दर्रा मेवाड मे प्रवेश करता है) अत्यन्त घने एव विकट जगल हैं, जिसमे बाघ, चीता, रीछ, सूअर, भेडिया, लकडबग्घा (जरख), नीलगाय हरिन, चीतल, खरगोश आदि जगली पशु मिलते हैं। इसके कारण यह स्थल प्रसिद्ध शिकारगाह रहा है, जहा मेवाड और मारवाड के शासक, अग्रेज अधिकारी, घाणेराव के ठाकुर तथा उनके द्वारा आमत्रित विशिष्ट शिकारी बराबर शिकार के लिये आया करते थे।

अरावली के ऊपरी भाग में सालर, गूतर, कडाया, धौ, ढाक आदि के वृक्ष हैं। पर्वतीय ढाल के नीचे ढाक, बैर, खैर, धामण, और धौ के वृक्ष हैं। धौ और खैर की लकडी इमारतों के काम आती है। मैदानी भाग में बबूल के वृक्ष चारों ओर फैले हुए हैं। जगली भाग की पैदावार में प्रधानतः इमारती लकडी के अलावा जलाने की लकडी, बास, शहद, मोम, गोंद और घास की बहुतायत है, जो आदिवासी लोगों की जीविका के प्रधान साधन रहे हैं।

नाडोल के पास लाल पत्थर की खाने हैं। घाणेराव के दक्षिण पूर्व में सर्पेन्टाइन (हरा पत्थर) की खानें स्थित हैं। घाणेराव के निकट सोनाना में अरावली पहाडियो में सगमरमर पत्थर की खानें भी है। यह क्षेत्र सूती कपडे की सुन्दर रगाई और छपाई के लिए भी प्रसिद्ध है।

घाणेराव

मारवाड राज्य का प्रशासन 21 हुकूमतो (परगनो) मे विभाजित था। घाणेराव ठिकाना देसूरी हुकूमत के अन्तर्गत था। बाद में प्रबन्ध की दृष्टि से कुछ भाग बाली हुकूमत के अन्तर्गत चला गया। घाणेराव प्रथम श्रेणी का ठिकाना था, जिसके स्वामी को मारवाड रियासत की ओर से दीवानी मामलो मे 1000 रुपया तक के मुकद्दमे सुनने तथा फौजदारी मामलो मे 6 महिने की कैद और 300 रुपया तक का जुर्माना करने का अधिकार प्राप्त था।

घाणेराव ठिकाने के अधिकार में कुल 38½ गाव एव गुडे थे जिनकी नामावली परिशिष्ट मे दी जा रही है। इनमे लगभग 3257 घर और 14163 की कुल आबादी थी। घाणेराव ठिकाने की राज्य सरकार द्वारा निश्चित की गई रेख 37600 रुपया वार्षिक थी। ठिकाने की ओर से मारवाड राज्य को 3098 रु० वार्षिक खिराज दी जाती थी।

1909 ई० मे घाणेराव कस्बे की आबादी 2874 थी और कस्बे मे एक पाठशाला और एक पोस्ट आफिस थे।

घाणेराव ठिकाने के स्वामी को मारवाड महाराजा के दरबार मे वे सभी हक-हकूक मिले हुए थे जो उस राज्य के अन्य प्रथम श्रेणी के ठिकानेदारो को प्राप्त थे।

जैसा कि ऊपर कहा गया है घाणेराव कस्बा ऐतिहासिक एव सास्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त प्राचीन स्थल है। इसका पुराना नाम प्राचीन पाडुलिपियो, शिलालेखो

आदि में पाणेरा, पाणोरा, पाणपुर आदि मिलता है। वास्तव में यह स्थान गोडवाड अथवा गोरवाड प्रदेश का सर्वाधिक प्राचीन एव महत्वपूर्ण स्थान है। यह बात इस स्थान की भौगोलिक स्थिति, यहां पर उपलब्ध प्राचीन मन्दिरों एव भवनों के खंडहरों, प्राचीन बावड़ियों, शिलालेखों आदि से प्रमाणित होती है, साथ ही प्राचीन पाण्डुलिपियों में इस स्थान का उल्लेख मिलता है। शोध और अध्ययन से यह भी पता चलता है कि यह कस्बा न केवल अत्यन्त प्राचीन है अपितु यह इस प्रदेश का प्राचीनकाल से सांस्कृतिक, धार्मिक तथा औद्योगिक एव व्यावसायिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण केन्द्र रहा होगा।[1]

पाणेराव में गली गली में तथा कस्बे के बाहर यत्र तत्र विष्णु, शिव एव महावीर के मन्दिर बड़ी तादाद में देखने को मिलते हैं। इसके अतिरिक्त देवी (माता), रुद्र, गणेश और हनुमान के कई मन्दिर भी हैं। इनमें सर्वाधिक प्राचीन मन्दिरों में मूछाला महावीर, अम्बिका एव लक्ष्मीनाथ के मन्दिर हैं, जिनकी बार बार मरम्मत किये जाते रहने से ये अभी तक सुरक्षित हैं। पाणेराव में दक्षिण-पूर्व में चार किलोमीटर की दूरी पर स्थित गोडवाड के पांच तीर्थ स्थलों में से एक दसवीं शताब्दी का मूछाला महावीर का मन्दिर सर्वोत्तम स्थिति एव व्यवस्था में है। राणकपुर के विशाल जैन मन्दिर के समान ही यह मन्दिर भव्य एव शिल्पकला का उत्कृष्ट नमूना है। यहां वर्ष भर तीर्थयात्री आते रहते हैं, जिनके ठहरने की उत्तम व्यवस्था है। यह मन्दिर ऊंची अरावली पर्वत माला की तलहटी में छोटी पहाड़ियों से घिरा हुआ एकदम एकांत स्थल में बना हुआ है। मन्दिर में महावीर की संगमरमर की विशाल मूर्ति स्थित है। मन्दिर के बाहर जैन धर्म के प्रवर्तक हितविजय सूरि की संगमरमर की मूर्ति (बैठी हुई मुद्रा में) बनाई गई है, जिनको हरिविजय सूरि के 13 वें पाट पर माना जाता है। इसी मन्दिर के मुख्य द्वार पर बायी ओर ताक में एक छोटी श्याम पत्थर की भैरव की मूर्ति स्थित है। वहीं दाहिनी ओर एक चबूतरे पर शिवलिंग का स्थान बना हुआ है। यहां पर दण्डनायक वैजल देव के समय का वि० सं० 1213 (1156 ई०) का शिलालेख है।

---

1 आबू पर्वत पर अचलेश्वर के मन्दिर में खड़े हुए विशाल लोह के त्रिशूल पर खुदे हुए लेख से पता चलता है कि यह त्रिशूल वि० सं० 1468 (1411 ई) में पाणेरा में राणा लाखा के समय में बनाया गया था तथा नाणा के ठाकुर मांडण और कुंवर मादा ने इसको अचलेश्वर पर चढ़ाया।
(ओझा-उदयपुर राज्य का इतिहास पृ०–269)

कस्बे के पूर्वी किनारे पर अम्बिका का मन्दिर स्थित है, जिसके सामने एक प्राचीन कुण्ड बना हुआ है। इसके पास ही मुक्तेश्वर महादेव, हनुमान और पद्म नाभ विष्णु मन्दिर स्थित है, जो सब प्राचीन हैं। अम्बिका मदिर की प्राचीन मूर्ति के स्थान पर माताजी की नवीन लगभग पाच फुट ऊची सगमरमर की मूर्ति स्थापित की गई है। मूर्ति के निचले भाग में खुदे हुए शिलालेख से पता चलता है कि वि० स० 1792 (1735 ई०) मे घाणेराव के तत्कालीन स्वामी ठाकुर पदमसिह द्वारा यह मूर्ति स्थापित की गई थी।[1] इसी मन्दिर के मडप भाग में सफेदी से पुती हुई दीवारो पर कई लेख खुदे हुए दृष्टिगत होते हैं, जिनमे से अब तक वि० स० 1172, 1192, 1181, 1203 एव 1212 के लेख पढे गये हैं, जो ऐतिहासिक अध्ययन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।[2]

घाणेराव कस्बे के दक्षिणी पूर्वी कोने पर एक ऊची टेकरी पर प्राचीन दुर्ग के खण्डहर विद्यमान हैं, जिनके भीतर के महलो की विशाल दिवालो का एक भाग और मुख्य द्वार आज भी सुरक्षित है। मुख्य द्वार मे इस समय घाणेराव पुलिस चौकी है। द्वार के भीतर घुसने पर सामने ऊचे भाग पर फैले हुए प्राचीन महलो के खण्डहर हैं, जिनके निचले भाग मे अन्धेरा गुप्त भाग और मार्ग है। इसके उत्तरी भाग मे अभी तक विद्यमान ऊची दीवाल के निचले भाग में दुर्ग से बाहर निकलने का गुप्त द्वार बना हुआ है, जो अन्दर के महलो के निचले अन्धेरे गुप्त मार्ग से जुडा हुआ होना चाहिये। इन महलो के इर्द-गिर्द निरन्तर ध्वस्त हो रही प्राचीन दीवालो के अवशेष और मलबा आदि पडे हुए हैं। ये खण्डहर घाणेराव ठिकाने के प्राचीन दुर्ग के हैं, जिनका निर्माण घाणेराव ठिकाने के प्रथम स्वामी गोपालदास के पुत्र विशनसिंह (कृष्णदास) ने करवाया था और जिसको 1804 ई मे जोधपुर के महाराजा मानसिंह ने नष्ट करवा दिया था।

घाणेराव के मध्य मे ऊचे भाग पर एक विस्तृत और सुदृढ दुर्ग[3] बना हुआ है, जिसके अन्दर घाणेराव के स्वामी के महल हैं। उसी के भीतर मुख्य द्वार के

---

1 "श्री पूवाव माताजी सेवका राज श्री पदम सीघजी प्रताप सीघजी सुत- मेरता दव रा करायो देवल घाणेरा सवत् 1792 समसर सुद 1 पचोली प्रतापराम।"

2 शोध पत्रिका, वर्ष 21, अङ्क 3, श्री रतनचन्द्र अग्रवाल का लेख- 'घाणेराव का अप्रकाशित लेख।'

3 ठिकाने के प्राचीन दुर्ग को नष्ट किये जाने के बाद ठाकुर अजीतसिंह (वि०स० *1857-1902*) ने इस नये दुर्ग का निर्माण कराया।

उपर मकरार खाता, बाईं ओर कचहरी के दफ्तर और दोनों पुडगाम हैं। महलों का प्रधान भाग दो भागों में विभाजित है– बाईं ओर के भाग में जनाना महल है और दाहिनी भाग में मर्दाना महल है। जनाना महल के भीतर चौक में मुरलीधरजी का मन्दिर है, जो घाणेराव के राजपरिवार के इष्टदेव हैं। मर्दाना महलों वाले भाग मे राधामाधवजी का मन्दिर है। मर्दाना महलों के द्वार में घुमने पर दाहिनी ओर वाले भाग मे प्रथम मंजिल पर एक बड़े कमरे के प्राचीन हाथी दांत से जड़े किवाड़ लगे हुए हैं। जिनके बारे मे कहा जाता है कि किवाड़ गुजरात-आक्रमण के समय अहमदाबाद से लाये गये थे। घाणेराव ठिकाने की दो तोपें आज भी जोधपुर किले में रखी हुई हैं, जो प्राचीन दुर्ग को नष्ट करने के समय मारवाड़ राज्य की फौजें यहां से ले गई थी और जिन पर घाणेराव नाम खुदा हुआ है।

दुर्ग एव महलो का प्रारम्भिक निर्माण ठाकुर अजीतसिंह के समय में ही हो गया था। महलो का भीतरी भाग प्राचीन निर्माण का है, किन्तु बाहरी भाग को पुनर्निमित कर आधुनिक स्वरूप दिया गया है। वर्तमान ठाकुर साहब के पूर्वज ठाकुर जोधसिंहजी अपनी घुड़सवारी के शौक के कारण नाडोल अधिक रहते थे इसलिये उन्होंने वहां दुर्ग, महल आदि का निर्माण कराया। घाणेराव के पुराने महलो का जीर्णोद्धार एव नये भवनो का निर्माण अधिकांशत वर्तमान ठाकुर लक्ष्मणसिंह जी द्वारा कराया गया है। महल तीन मंजिले हैं और उपरी भाग मे छतरियां है। महलो की खिड़कियां खुली और आधुनिक ढंग की बनी हुई है।

घाणेराव के मेड़तिया राजपरिवार की कुलदेवी नागणिचियाजी हैं, जिनका मन्दिर कस्बे के दक्षिणी पूर्वी भाग में लगभग एक किलोमीटर दूर शिलाओं से बनी हुई ऊंची टेकरी पर स्थित है।

इसी मन्दिर के नीचे विशाल चट्टानो के बीच बनी हुई खोह मे गुप्तेश्वर महादेव का मन्दिर है, जिसके प्रवेश के लिये चट्टानो के बीच प्राकृतिक रूप से बना हुआ संकरा मार्ग है। मध्य मे कुछ खुले समतल भाग मे नीचे की चट्टान का उभरा हुआ ऊपरी भाग प्राकृतिक तौर पर शिवलिंग के रूप मे बन गया है। शिवलिंग के नीचे जलाधारी (योनि) बना दी गई है और मन्दिर निर्मित कर दिया गया है। इस मन्दिर की छत पर कोने मे ऊपर की ओर एक बड़ा छेद है, जिसमे से ऊपर नागणिचियाजी के मन्दिर की ओर जाने का मार्ग है।

मन्दिर मे तीन भागो मे लगभग पाच सौ वर्ष प्राचीन विशाल मूर्तियां अवस्थित है। मध्यभाग मे गणेशजी की 8 फीट ऊची सगमरमर की मूर्ति है जिसके दोनो ओर ऋद्धि एव सिद्धि की 6-6 फीट ऊची मूर्तिया रखी हुई है। मन्दिर एक भाग मे लाल पत्थर की हनुमानजी की 7 फीट ऊची मूर्ति स्थित है तथा उसके सामने दूसरे भाग मे 6 फीट ऊची श्याम पत्थर की भैरव की मूर्ति रखी हुई है। इसी घूणी मे महादेव का एक प्राचीन मन्दिर भी है।

घाणेराव कस्बे मे 14 जैन मन्दिर हैं और कई वैष्णव, शिव एव माताजी के मन्दिर है। गोडवाड जैन धर्म का प्राचीन कार्य-स्थल होने से यहा के पाच जैन तीर्थ माने जाते हैं, जहा देशभर से जैन धर्मावलम्बी तीर्थयात्रा के लिये आते है। ये पाच तीर्थी स्थल है- राणकपुर, मूछाला महावीर (घाणेराव), नाडलाई, नाडोल और वरकाणा।

घाणेराव ठिकाने का दूसरा अत्यन्त प्राचीन ऐतिहासिक स्थल नाडोल रहा है, जिसका वर्णन ऊपर किया है। ईसा की दसवी से बाहरवी शताब्दी के काल मे नाडोल के दुर्ग की भारत के प्रसिद्ध दुर्गों म गिनती होती थी। इसी दुर्ग मे नाडोल (सप्तशत) राज्य के चौहान शासक निवास करते थे। उस दुर्ग के खण्डहर आज भी नगर के पश्चिमी भाग म दिखाई देते हैं। नाडोल के दुर्ग के खण्डहर चाला का बावडी महावीर तथा अन्य मन्दिर चौहान शासको की कलाप्रियता के साक्षी हैं। ठिकाने के मध्य भाग मे स्थित होने के कारण ठाकुर जोधसिहजी ने अधिकत नाडोल मे ही निवास किया और वहा मर्दाना एव जनाना महल, ज्यूडिशियल कोर्ट, घोडो के लिये अस्तबल, ऊटो के लिये शुतरखाना, पुलिस थाना तथा कर्मचारियो के रहने के लिये मकान आदि का निर्माण कराया, जिनमें स कई का पुन जीर्णोद्धार वर्तमान ठाकुर साहब ने कराया।

जोधपुर नगर मे सोजतिया गेट के अन्दर के भाग मे दाहिनी ओर घाणेराव की हवेली बनी हुई हैं जिसको ठाकुर जोधसिहजी ने बनवाया था। वर्तमान ठाकुर लक्ष्मणसिहजी ने हवेली का पुनर्निर्माण कराया।

विद्या, कला और ज्ञान की परम्परा

घाणेराव न केवल प्राचीन काल तथा चौहान उत्कर्ष काल मे संस्कृति, कला, साहित्य, उद्योग एव व्यवसाय आदि प्रवृत्तियो का केन्द्र रहा अपितु भारतीय इतिहास के मध्य युग मे भी यहा कला, सस्कृति, साहित्य का पोषण होता रहा। मेडतिया राठोड शाखा द्वारा घाणेराव को अपना निवास बनाने के बाद यहा के

ठाकुरो द्वारा विभिन्न प्रकार की विधाओ एव साहित्य के सृजन को प्रोत्साहन दिया गया। इस बात के प्रमाण अधिकाधिक मिल रहे हैं। उदाहरण के लिये वि० स० 1759 (1702 ई) मे घाणेराव मे ठाकुर गोपीनाथजी के आदेश से भट्टारक शोभजी के शिष्य वाणारस नागा ने वेदव्यास कृत महाभारत के वनपर्व' तथा 'कर्मपर्व' की प्रतिलिपि की। वाणारस नागा ने ही ठाकुर प्रतापसिह के आदेश से वि स 1773 (1716 ई) मे घाणेराव मे महाभारत के 'गदापर्व' की प्रतिलिपि की। इसी लेखक ने यहा वि० स० 1788 (1731 ई०) मे महाराज (ठाकुर) पद्मसिह के आदेश से मडल सूत्रधार कृत 'राज्यवल्लभ' ग्रथ की प्रतिलिपि तैयार की।

इससे पूर्व ठाकुर किशनसिह (कृष्णदास) के काल (1626–1649 ई०) मे वि० स० 1704 (1647 ई) मे वाराणसी तिलकचन्द द्वारा केशवदास कृत 'रसिकप्रिया' एव जल्ह कवि कृत 'बुद्धि रासो' तथा मागमत' की प्रतिया तैयार की गई। वि० स० 1694 (1637 ई) मे कर्मसिह भट्टारक ने सेमसागर कृत 'पश्चिमाधीश स्तोत्र' की प्रतिलिपि की, बीठल जोशी ने 'शकुनावली', माधोदास दधियाडिया कृत 'गजमोक्ष', 'राम रासो' और छीहलविचार, चदवरदाई कृत 'विनय मगल ओर 'मान कुतुहल ग्रन्थो की प्रतिलिपि की तथा वाराणसी तिलकचन्द ने पृथ्वीराज कृत वेलि क्रिसन रुकमणि री' (1) की प्रतिलिपि की। तिलकचन्द ने ही वि० स० 1697 (1640 ई) म सूरसागर की प्रति तैयार की तथा वि० स० 1704 (1647 ई) म 'बुद्धि रासो' ग्रन्थ का लेखन सम्पूर्ण किया। घाणेराव मे वि० स० 1699 (1642 ई) मे छीहल कृत 'पच सहेलीरा दूहा' तथा माधोदास कृत गुणराम रासो' की प्रतिलिपिया की गई।

ठाकुर दुर्जनसिह (1649–1675 ई) के काल मे घाणेराव मे वि० स० 1714 (1657 ई) म ददेवच्छा ने पार्थिव पूजा' की प्रति तैयार की। इसी समय सक्राति चन्द्रमा विचार', 'सकट चतुर्थी विधान', विष्णु पजर स्तोत्र, राम रक्षा स्तोत्र', ब्रह्म कवच' ग्रन्थो की प्रतिया घाणेराव मे तैयार की गई। वि० स० 1721 (1664 ई) मे कर्मचन्द ने नयनसुख कृत 'वैद्य मनोत्सव' की प्रतिलिपि की तथा वि० स० 1729 (1672 ई) म आत्माराम ने नददास-कृत 'मान मजरी नाम माला तथा 'एकादशीवृत कथा' की प्रतिया तैयार की।

---

1 वेलि क्रिसन रुक्मणि री' पाडुलिपि के पृ० 99 पर फारसी लिपिमाला दी गई है और पृष्ठ 100 पर कर्नाटी लिपि लिखी हुई है।

ठाकुर पद्मसिंह (1720-1742 ई०) के काल में घाणेराव में उनके आदेशानुसार मडन सूत्रधार कृत 'राजवल्लभ' की प्रतिलिपि वि० स० 1788 (1731 ई०) में वाणारस नागा द्वारा की गई। वि० स० 1790 (1733 ई०) म नागराज के शिष्य रूपजी ने 'वास्तुसार' की टीका सहित प्रतिलिपि तथा 'भुवनदीपक' (बालवबोध सहित) की प्रतिलिपि तैयार की। वि० स० 1781 (1724 ई०) मे जगन्नाथ ओझा द्वारा 'स्तोभानु सहार परिशिष्ट' की प्रति तैयार की गई। नित्यसार द्वारा 'सम्बोध सप्तिका प्रकरण' की प्रति तैयार की गई।

ठाकुर वीरमदेव (1743-1478 ई०) के काल में वि० स० 1802 (1745 ई०) मे घाणेराव में रूपजी द्वारा 'उपदेशमाला प्रकरणम्' (बालावबोध सहित), चतुविजयगणि द्वारा वि० स० 1829 (1772 ई०) हरिदत्त भट्ट कृत जगद् भूषण प्रबन्ध', वि० स० 1823 (1766 ई०) मे कान्हजी व्यास सुत मायाराम द्वारा 'शुकव्यास सवाद' की प्रतिलिपि तैयार की गई। इसी भांति ठाकुर प्रतापसिंह (1845-1856 ई०) के काल मे वि० स० 1906 (1849 ई०) में नन्दकिशोर ने 'षट्-पचाशिका' (टीका सहित) की प्रति तैयार की।

उपर्युक्त विवरण लेखक द्वारा अद्यावधि प्राप्त जानकारी के आधार पर दिया गया है। यह निश्चित है कि आगे शोध द्वारा इसके सबन्ध मे अधिक जानकारी प्राप्त होगी। उपर्युक्त वर्णन से यह निस्सदेह रूप से स्पष्ट हो जाता है कि घाणेराव के मेड़तिया ठाकुर अच्छे योद्धा और वीर पुरुष होने के साथ-साथ विद्या, कला और साहित्य के प्रेमी, मर्मज्ञ एव प्रोत्साहक रहे। यह बात घाणेराव की चित्रांकन परम्परा से भी सिद्ध होती है। वि० स० 1660 (1503 ई0) के लगभग घाणेराव में 'रागमाला' और 'गीत गोविन्द' सचित्र ग्रन्थ तैयार किये गये[1] जिन पर मेवाड़ी चित्र शैली का प्रभाव है। ग्रन्थ-लेखन के साथ साथ घाणेराव मे चित्रांकन परम्परा कायम रही। वि० स० 1704 (1647 ई०) मे केशवदास कृत 'रसिकप्रिया' की सचित्र प्रति वाराणसी तिलकचन्द द्वारा तैयार की गई थी। वि० स० 1782 (1725 ई०) का ठाकुर पद्मसिंह के दरबार का चित्र प्रिंस आफ वेल्स म्युजियम, बम्बई के सग्रहालय में उपलब्ध है जिसको घाणेराव मे जोधपुर के चित्रकार छज्जू ने बनाया था।[2] ईसा की अठारहवी शताब्दी तथा उन्नीसवी शताब्दी के

---

1. डॉ मोतीचन्द मेवाड पेन्टिग्ज, प्लेट स० 7
   डॉ मोतीचन्द, कार्ल खण्डेलवाल मिनिएचर पेन्टिग्ज, पृ० 58
2. रामवल्लभ सोमानी. घाणेराव की चित्रांकन परम्परा, वरदा, वर्ष 21, अक 4

प्रारम्भिक काल के कतिपय चित्र नवलगढ़ ठिकाने के कुँवर संग्रामसिंह के संग्रहालय मे विद्यमान हैं, जिनमे वि० स० 1820 (1763 ई०) का महाराजा विजयसिंह और घाणेराव ठाकुर वीरमदेव की मुलाकात का चित्र, ठाकुर दुर्जनसिंह और उनकी महारानी का चित्र, वि० स० 1868 (1811 ई०) का जोधपुर के महाराजा मानसिंह द्वारा ठाकुर अजीतसिंह के स्वागत का चित्र, ठाकुर अजीतसिंह और प्रतापसिंह के चित्र तथा घाणेराव के बागो के बाग का चित्र, ठाकुर अजीतसिंह के और प्रतापसिंह के हाथी के चित्र आदि प्रमुख हैं।[1]

ये सभी चित्र घाणेराव की अपनी विशिष्ट परम्परा के हैं, जिनमे प्रारम्भ के कुछ चित्रो पर मेवाडी शैली का तथा बाद के चित्रो पर मारवाडी शैली का अथवा दोनो शैलियो का मिश्रित प्रभाव विद्यमान है।

प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थो एव विवरणो मे यत्र-तत्र घाणेराव नगर का वर्णन मिलता है। ऐसे दो वर्णन अभी तक दृष्टिगत हुए है। इनमे से एक सेवग मनसाराम (मछराधि) कृत घाणेराव की गजल है। यह कवि घाणेराव ठाकुर अजीतसिंह (1800-1856 ई०) के काल मे वहा के हाकिम मानमल भण्डारी से मिलने घाणेराव गया था। नगर की शोभा से प्रभावित होकर उसने नगर की शोभा और उसके विभिन्न स्थानो, भवनो, मन्दिरो आदि का वर्णन किया है, जो ऐतिहासिक महत्व का है। कवि ने गजल मे गोडवाड मे भोमियो के उपद्रव तथा उनको दबाने के लिये जोधपुर के महाराजा मानसिंह द्वारा मानमल को घाणेराव मे हाकिम नियुक्ति करने का उल्लेख किया है। गजल मे महाराजा मानसिंह के शौर्य का वर्णन करते हुए उनके द्वारा सिरोही विजय का उल्लेख भी किया गया है।

दूसरा वर्णन 'लेखपद्धति' वि० स० 1812 (1755 ई०) का है, जिस समय मेवाड मे महाराणा राजसिंह (द्वितीय) राज्य करते थे और घाणेराव में ठाकुर वीरमदेव का शासन था। यह भी एक काव्यात्मक वर्णन है। उस वर्ष जैन साधु श्री विजयधर्म सूरि घाणेराव आये थे। लेख पद्धति में उस समय के घाणेराव नगर, उसके निवासियो, विभिन्न स्थाना, मन्दिरो आदि का महत्वपूर्ण वृत्तान्त दिया गया है। इस ग्रन्थ में वि० स० 1812, चेत सुद 7 का उदयपुर के श्रावको का विजय धर्म सूरि के नाम लिखा गया पत्र भी है, [illegible] नगर के तत्कालीन कई व्यक्तियो के नाम दिये गये है। ग्रन्थ में [illegible] नगर, आबू पर्वत तथा अन्य जैन ती[illegible] का

प्राचीन इतिवृत्त

घाणेराव ठिकाने के स्वामी राठोड अथवा राष्ट्रकूट वंश के थे। वे मेडतिया राठोड कहलाते हैं। राजपूताने के इतिहास मे मेडतिया राठोड साहस, शूरवीरता और बलिदान के लिये अत्यन्त प्रसिद्ध हो गये हैं। भक्त शिरोमणि मीराबाई ने इसी वंश में जन्म लिया और बादशाह अकबर के विरुद्ध चित्तौडगढ की रक्षा करते हुए आत्मोत्सर्ग करने वाला वीर योद्धा जयमल मेडतिया राठोड शाखा का ही था। राजपूताने मे राठोडो का इतिहास ईसा की तेरहवी शताब्दी से प्रारम्भ होता है जबकि कन्नौज के महाराज राठोड जयचन्द्र के पौत्र सेतराम के पुत्र सीहा वि० स० 1283 के लगभग द्वारिका जाते हुए मारवाड की तरफ आये। ऐसा माना जाता है कि सीहा ने भीनमाल के ब्राह्मणो की प्रार्थना पर उनकी मुलतान के मुसलमान शासक के आक्रमण से रक्षा की। उसके बाद लौटते समय पाली आये। पाली नगर उन दिनो व्यापार का प्रमुख केन्द्र होने से बडा सम्पन्न था। फारस और अरब आदि पश्चिमी देशो का तिजारती सामान उसी नगर से होकर गुजरता था। पाली के आसपास के जगलो मे रहने वाले मेर, मीणा आदि लुटेरे लोग लूटपाट किया करते थे। अतएव वहाँ के निवासी पल्लीवाल ब्राह्मणो ने सीहा से सहायता की प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर सीहा ने उनकी सहायता की। ऐसा प्रतीत होता है कि वहा की अस्त-व्यस्त एव नेतृत्वविहीन राजनैतिक स्थिति को देखकर सीहा ने अपनी शक्ति और वीरता के बल पर राजस्थान के इस भूभाग मे अपनी स्वतंत्र सत्ता कायम करने का निश्चय किया।

तेरहवी शताब्दी के प्रारम्भ तक राजस्थान मे प्रतिहार और चौहान शक्तियो का ह्रास हो चुका था और गुजरात के चालुक्य भी इस क्षेत्र मे प्रभावहीन हो गये थे। मेवाड के गुहिल शासक अभी अपनी शक्ति जमाने मे लगे हुए थे। उत्तर

और पश्चिम की ओर से मुसलमानों के आक्रमण हो रहे थे। ऐसी स्थिति में सीहा ने साधन सम्पन्न पाली क्षेत्र को अपना केन्द्र बना कर इस क्षेत्र में अपना राज्य स्थापित करने का निश्चय किया। उनको अपने प्रयास में सफलता मिली और उन्होंने आसपास के क्षेत्र पर कब्जा करके अपनी सत्ता स्थापित की। राव सीहा से लगाकर राव जोधा[1] तक के लगभग सवा दो सौ वर्षों के दौरान निरन्तर उतार-चढ़ाव से गुजरते हुए राठोड़-शक्ति का धीरे-धीरे प्रसार होता गया। इस काल में कभी-कभी स्वतन्त्र रूप से और कभी-कभी मेवाड़ के गुहिल शासकों का साथ देकर राठोड़ शासक माडू, गुजरात तथा दिल्ली से होने वाले मुसलमान आक्रमणों के खिलाफ लड़ते रहे। वि० स० 1512 (1455 ई०) में राव जोधा का मंडोर में राज्याभिषेक हुआ। उन्होंने तीन वर्ष बाद वि० स० 1515 में मंडोर से 6 मील दूर दक्षिण की ओर भाकिशैल पहाडी पर जोधपुर दुर्ग का निर्माण कराया। इस दुर्ग के निर्माण के साथ ही राठोड़ों के मारवाड़ राज्य की स्थायी नींव पड़ी और जोधपुर उसकी स्थाई राजधानी रही। इनके काल में दिल्ली की बादशाहत बहुत कमजोर हो गई थी और गुजरात, मालवा, जौनपुर, मुल्तान आदि प्रदेश अलग और स्वतन्त्र हो गये थे। राव जोधा ने इस स्थिति का लाभ उठाकर और मेवाड़ से मैत्री बनाकर अपने राज्य का विस्तार किया और उसको निश्चित स्वरूप प्रदान किया। इन्हीं के एक पुत्र बीका ने जागलू देश की ओर जाकर वहां अपना पृथक राज्य कायम किया जो बाद में बीकानेर राज्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

मेडता राज्य की स्थापना—

वि० स० 1518 (1461 ई०) में राव जोधा के चौथे पुत्र[2] दूदा ने माडू के बादशाह के अधीनस्थ मेडते का इलाका विजय किया और राव जोधा की आज्ञा से वहां का शासन चलाने लगे। दूदा से राठोड़ वंश की इतिहास प्रसिद्ध शाखा मेडतिया का प्रादुर्भाव हुआ। राव दूदा की राजधानी मेडता नगर में स्थापित होने से इनके वंशज मेडतिया कहलाये।

---

1 राव सीहा के बाद उत्तराधिकार का क्रम इस भांति रहा . राव आस्थान, राव रायपाल, राव जालणसी, राव छाडा, राव तीडा, राव कान्हड देव, राव त्रिभुवनसी, राव मल्लिनाथ, राव जगमाल, राव वीरम, राव चूंडा, राव कान्हा राव सत्ता, राव रणमल और राव जोधा।

2 कर्नल जेम्स टॉड—अनल्स एण्ड एंटीक्वीटिज ऑफ राजस्थान, भाग-2, पृष्ठ 17, उनके अनुसार बरसिंह पाचवा पुत्र था और दूदा से छोटा था।

प० विश्वेश्वरनाथ रेऊ के अनुसार राव जोधा के 20 पुत्र थे।[1] उनके प्रथम पुत्र नीवा की मृत्यु राव जोधा के जीतेजी हो गई थी। द्वितीय पुत्र जोगा आलसी था। इसलिये तृतीय पुत्र सातल उनका उत्तराधिकारी हुआ। दूदा चौथा, वरसिंह पाचवा और बीका छटवा पुत्र था। राव दूदा का जन्म वि० स० 1497 आषाढ शुक्ला १५ (सन् 1440, 15 जून) बुधवार को मडोवर मे हुआ।[2]

दूदा का बाल्यकाल विपत्तियो मे गुजरा। उनके जन्म से दो वर्ष पूर्व उनके पितामह रणमल चित्तौड मे मारे गये थे और उनके पिता जोधा को वहाँ से जान बचाकर भागना पडा था। मेवाड की सेना ने उनका पीछा किया और मारवाड के विभिन्न स्थानो पर अधिकार करते हुए दूदा के जन्म के एक वर्ष बाद मडोवर पर भी कब्जा कर लिया था। वि० स० 1510 मे जब दूदा 13 वर्ष के थे, राव जोधा ने मडोवर पर पुन अधिकार किया। वि० स० 1512 तक राव जोधा की महाराणा कुम्भा के साथ सन्धि हो गई जिसके अनुसार मेवाड एव मारवाड राज्यो की सीमाए निश्चित हो गई।[3]

मारवाड राज्य का विस्तार हो रहा था और नये भूभाग विजय कर राज्य मे जोडे जा रहे थे। ऐसे समय मे मध्ययुगीन परिपाटी के अनुसार दूदा के मन मे भी अपने बाहुबल एव पराक्रम द्वारा एक स्वतन्त्र प्रदेश विजय करने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। वि० स० 1518 मे, जब उनकी आयु 21 वर्ष की थी, अपने पिता की आज्ञा से अपने सहोदर कनिष्ठ भ्राता वरसिंह को साथ लेकर दूदा

1 प० विश्वेश्वरनाथ रेऊ-मारवाड का इतिहास, भाग प्रथम, पृ० 103 राव जोधा के पुत्रो की सख्या के सम्बन्ध मे पुरानी ख्यातो तथा इतिहासकारो मे एकमत नही है। मु शी देवीप्रसाद द्वारा सगृहीत राठोडो की वशावली मे 19, जोधपुर राज्य की ख्यात एव दयालदास की ख्यात मे 17 तथा राठोडो की वशावली के पुराने पत्रो म 14 पुत्रो के नाम दिये गये हैं।

2 जसवन्त वश प्रकाश, पृ० 59। प० विश्वेश्वरनाथ रेऊ ने आषाढ के बजाय आश्विन मास माना है।

3 विश्वेश्वरनाथ रेऊ-मारवाड का इतिहास प्रथम भाग, पृ० 91। 'बबूल के पेड वाली पृथ्वी जोधाजी को सौप दी गई और आवलो वाली जमीन महाराणा के अधिकार मे रही।'

ने मेडते पर आक्रमण किया। उस समय मेडता माडू के सुलतान महमूद खिलजी के अधीन एवं उसके अजमेर सूबेदार के शासन मे था। मुसलमान सैनिकों को परास्त कर उन्होंने मेडते तथा उसके बाद उस प्रदेश के 360 गावो पर अधिकार कर लिया। विजय के बाद राव दूदा ने वहा एक सुदृढ दुर्ग का निर्माण कराया एवं एक सुन्दर प्रासाद बनाया और वे सपरिवार मेडते मे निवास करने लगे।[1]

ऊदा (उदयसिंह) द्वारा अपने पिता महाराणा कुम्भा की हत्या करने के बाद राव जोधा को अपने पक्ष मे रखने की दृष्टि से उसने अजमेर व साभर के परगने राव जोधा को दे दिये थे जिससे मारवाड राज्य का अधिक विस्तार हो गया।[2] किन्तु माडू के बादशाह महमूद खिलजी ने मेवाड के गृहकलह की स्थिति का लाभ उठाने की दृष्टि से एक बडी सेना लेकर राजपूताने पर आक्रमण किया

---

1. जयमल वंश प्रकाश, प्रथम भाग, पृ० 61। विश्वेश्वरनाथ रेऊ के अनुसार वरसिंह दूदा से बडा एवं जोधा का सातवा पुत्र था। उनके अनुसार वरसिंह मेडते का स्वामी बना। वरसिंह के बाद उसका पुत्र सीहा मेडते का स्वामी हुआ, जो शिथिल था। अजमेर के सूबेदार मल्लूखा के आक्रमण के भय को देखते हुए सीहा के चाचा दूदा ने वहाँ का शासन अपने हाथ म ले लिया (मार० इति० प्र० भा० पृ० 106)। बाकीदास ने लिखा है कि राव जोधा की सोनगिरी चम्पारानी से दो पुत्र हुए–1 दूदो, 2 वरसिंह। राव जोधा ने दोनो को शामिल मे मेडता दिया। वरसिंह ने पीछे से दूदा को मेडते से बाहर निकाल दिया, तब वह बीकानेर चला गया। बाद मे जब वरसिंह द्वारा बादशाही शहर साभर मे लूटपाट की गई तो वह अजमेर मे कैद कर लिया गया। बीकानेर से दूदा और बीका ने आकर उसको छुडाया। वरसिंह की मृत्यु होने पर सातल ने मेडते पर अधिकार कर लिया और दूदा भी वहा आ गया। फिर उसने आधी भूमि वरसिंह के पुत्र सीहा को दे दी। (बाकीदास-राठोडा री वाता पृ 57,59)

2 विश्वेश्वरनाथ रेऊ-मारवाड राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० 99
गो० ही० ओझा-जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० 243
'जयमल वंश प्रकाश' म राणा उदयसिंह द्वारा राव जोधा को अजमेर दिया जाना तथा राव दूदा द्वारा मेवाडी सेना को परास्त कर साभर विजय करना

और राठोड सैनिकों को पराजित कर अजमेर एवं सांभर पर अधिकार कर लिया और ख्वाजा नियामतुल्लाखां को दोनों स्थानों का रक्षक नियुक्त कर लौट गया।

वि० सं० 1539 (1482 ई०) में अजमेर की सूबेदारी मल्लूखां को प्राप्त हुई। मल्लूखां निरन्तर मेड़ते पर घात लगाये रहा। किन्तु दूदा की सावधानी और वीरता के कारण उसकी एक न चली। वि० सं० 1544 (1487 ई०) में दूदा ने जैतारण पर हमला किया जिसमें दूदा की जीत हुई और वहां का अधिपति राठोड सिंधल मेघा युद्धभूमि में मारा गया।[1]

वि० सं० 1545 (1488 ई०) में राव जोधा का स्वर्गवास होने पर उनके ज्येष्ठ राजकुमार सातल जोधपुर के स्वामी हुए। अपने पिता के देहान्त पर दूदा ने भी मेड़ता राजधानी में राज्याभिषेक सम्पादित कर 'राव' की उपाधि धारण की। इसी प्रकार बीकानेर में बीका ने और छापर द्रोणपुर में बीदा ने भी 'राव' की उपाधियां धारण की।[2]

वि० सं० 1547 (1490 ई०) में राव बीका द्वारा हिसार के सूबेदार सारंगखां से अपने चाचा कांधलजी, जो एक वर्ष पूर्व उससे युद्ध करते हुए मारे गये थे, का बदला लेने के लिए हिसार पर चढ़ाई की गई। उस समय जोधपुर से राव सातल, मेड़ता से राव दूदा तथा छापर द्रोणपुर से बीदा राठोड[3] अपनी सेनाएं लेकर उनकी मदद को गये, जिसमें राठोडों की विजय हुई।

वि० सं० 1547 में मारवाड़ में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। खाद्य पदार्थों के अभाव से मेड़ते की प्रजा को कष्ट होने लगा। इस पर मेड़ते में वरसिंह ने सांभर के धनिक सेठों से अनाज प्राप्त करने के लिये धावा मारा। इस धावे के समाचार सुनकर अजमेर के हाकिम मल्लूखां ने मेड़ते पर चढ़ाई कर दी। चढ़ाई की खबर सुनकर जोधपुर से राव सातल अपने भाई की सहायता के लिए ससैन्य मेड़ता पहुंचे। पीपाड़ के पास कोसाणा नामक गांव में युद्ध हुआ। मल्लूखां को परास्त होकर अजमेर भागना पड़ा। इस युद्ध में राव सातलजी अत्यन्त

1 जयमल वंश प्रकाश, प्रथम भाग, पृ० 64

2 वही।

3 राव जोधा के जीवनकाल में जिस भांति उनके पुत्र बीका ने जांगलू प्रदेश और दूदा ने मेड़ता प्रदेश विजय किये थे। उसी भांति एक अन्य पुत्र बीदा ने छापर द्रोणपुर प्रदेश विजय कर अपना आधिपत्य स्थापित किया था।

घायल हो गये और उनकी मृत्यु हो गई।[1] इस युद्ध मे राव दूदा ने बड़ी वीरता प्रदर्शित की। दूदा ने युद्ध करते हुए मिरियाखा से उसका हाथी छीन लिया और खाँ को मार डाला।

---

1. जयमल वंश प्रकाश, भाग 1, पृ० 67

पं० विश्वेश्वरनाथ रेऊ मार० राज्य का इति० भाग 1, पृ० 106

प० रेऊ के अनुसार साभर के धावे के बाद मल्लूखा ने वरसिंह को अजमेर बुलाकर धोखे से कैद कर लिया था। इसकी सूचना मिलते ही जोधपुर से राव सातल, बीकानेर से राव बीका और मेडते से राव दूदा ने सम्मिलित होकर अजमेर पर चढ़ाई की। मल्लूखा ने उस समय तो वरसिंह को छोड दिया परन्तु शीघ्र ही तैयारी कर इसका बदला लेने के लिये मेडता पर चढाई की। जोधपुर और मेडता की सम्मिलित सेनाओं ने मल्लूखा को पराजित किया।

'जयमल वंश प्रकाश' के अनुसार कोसाणा युद्ध के बाद मल्लूखा ने धोखे से वरसिंह को गिरफ्तार कर लिया। उस समय राव दूदा बीकानेर गये हुए थे। वरसिंह को मुक्त कराने के लिये मेडता से राव दूदा, जोधपुर से राव सूजा और बीकानेर से राव बीका की सम्मिलित सेनाओं ने अजमेर पर चढ़ाई की। मल्लूखा ने इस सम्मिलित सेना की शक्ति से भयभीत होकर क्षमा-याचना की और वरसिंह को मुक्त कर दिया। इस पर राजपूत सेनायें बिना युद्ध किये लौट गई। (पृ० 67)

'जयमल वंश प्रकाश' मे यह भी लिखा है कि मल्लूखा ने धोखे से वरसिंह को विष दे दिया था, जिससे शीघ्र ही उनकी मृत्यु हो गई। उनके पुत्र सीहा को मेडते से जागीर म 'रीयां' का ठिकाना दिया गया जो कई वर्षों तक उनके वंशजो के अधिकार म रहा। बाद म इनके वंशज केशवदास को बादशाह जहांगीर ने मालवा प्रान्त मे 'भाबुआ' का राज्य प्रदान किया, जो निरन्तर उनके वंशजो के अधिकार म बना रहा।

यो ही ओझा ने लिखा है– उन दिनो मेडते पर सूजा के भाई दूदा तथा वरसिंह का अमल था वरसिंह इधर उधर लूटमार किया करता था। एक बार उसने साभर को लूटा तथा अजमेर की भूमि का बहुत सा नुकसान किया। अजमेर के सूबेदार मल्लूखा ने उसे लालच देकर अजमेर बुलाया और गिरफ्तार कर लिया। इस खबर के मिलने पर मेडता का प्रबन्ध अपने पुत्र वीरम को देकर दूदा बीकानेर गया। सलाह कर बीका सेना लेकर चला, मडते से दूदा तथा जोधपुर से सूजा सेना लेकर उससे मिल गये। यह हाल सुनकर मल्लूखां डर गया और उसने वरसिंह को छोड कर सुलह करली (उदय० इति० प्र० भा० पृ० 266)।

वि० स० 1555 (1498 ई०) मे जैतारण के सिंधल राठौडो पर जोधपुर का प्रभुत्व कायम रखने की दृष्टि से राव दूदा मेड़ता से सेना लेकर जोधपुराधीश राव सूजा की सहायता के लिये गये। सम्मिलित सेना को विजय प्राप्त हुई।

'जयमल वंश प्रकाश' मे उल्लेख है कि वि० स० 1559 (1502 ई०) मे मल्लूखा की पराजय से कुपित होकर मालवा का बादशाह नासिरुद्दीन ससैन्य राजपूताने पर चढ़ आया और साभर तक आ पहुचा। किन्तु जोधपुर, बीकानेर एवं मेड़ता की सेनाओ के सम्मिलित जमाव को देखकर वह भी लूटखसोट करता हुआ वापस मालवा चला गया।

वि स 1561, आश्विन शुक्ला 3 (ई 11 सितम्बर, 1504) को राव दूदा का स्वर्गवास हो गया। उस समय उनकी आयु 74 वर्ष थी। उन्होंने 27 वर्ष अपने पिता की जीवितावस्था एवं 16 वर्ष उनकी मृत्यु के बाद शासन किया।

राव दूदा बड़े साहसी, निर्भीक एवं वीर पुरुष थे। वे वैष्णव धर्मानुयायी तथा भगवान चतुर्भुज के पूर्ण भक्त थे, जिससे उनके वशजों के मुख्य इष्ट चतुर्भुज हैं। मेजर के० डी० इर्सकिन ने जोधपुर गजेटियर मे लिखा है कि वैष्णव सप्रदाय के प्रचारक बीकानेर राज्य के हरसर गाव के निवासी पवार वंश के महात्मा जमाजी ने राव जोधाजी के चतुर्थ पुत्र राव दूदा को एक लकड़ी की तलवार दी थी, जिसके द्वारा दूदा ने मेड़ता को विजय किया।[1]

राव दूदा ने मेड़ते मे सुन्दर राजभवन, भगवान चतुर्भुज का भव्य मन्दिर तथा 'दूदासर' नामक जलाशय बनवाया जो आज भी उनकी स्मृति के चिन्ह हैं। राव दूदा के वीरमदेव, रायमल, पृथ्वीराज, रत्नसिंह[2] और रायमल नामक पाच पुत्र हुए।

राव दूदा से ही मेड़तिया राठोड़ो की सुप्रसिद्ध शाखा निकली। मारवाड़ में मेड़तिया राठोड़ो के अधीन मुख्य मुख्य ठिकाने घाणेराव, आलणियावास, कुचामण, जावला, बूड़सू, रीयाँ, मीठड़ी, मीठड़ी बड़ू, वेरी, पाचवा, पाचोटा, सरगोर, बखलपुर, सुमेल, रेण, लूणवा, बोरावड़ मगलाना, बसन आदि रहे।

---

1 के० डी० इर्सकिन (मेजर)– राजपूताना गजेटियर, जि० 39 पृ० 197

2 रत्नसिंह की पुत्री मीराबाई हुई, जिनका विवाह महाराणा सागा के पुत्र भोजराज से हुआ था। मीराबाई इतिहास मे भक्त शिरोमणि के नाम से प्रसिद्ध हुई है जिनके भक्ति-गीत आज भी जन-जन गाते हैं।

राव वीरमदेव

राव दूदा के देहावसान के बाद वि. स. 1572 (ई 1515) मे वीरमदेव मेड़ते की गद्दी पर बैठे। राज्याभिषेक के समय राव वीरमदेव की आयु 38 वर्ष थी।[1] वि. स. 1553 (1496 ई) मे वीरमदेव का विवाह मेवाड के महाराणा रायमल की पुत्री गोरज्या कुमारी से हुआ था, जिससे राजकुमार प्रतापसिंह उत्पन्न हुए।

वीरमदेव के मेवाड की राजकुमारी से विवाह के कारण मेवाड-मेडता संबधो पर दूरगामी प्रभाव पडा। इधर वि. स 1588 (ई. 1531) मे जोधपुर मे मालदेव के शासक बनने के साथ ही मालदेव की राज्य विस्तार एव एकतत्रीय निरकुश शासन की नीति के कारण मेडता-मारवाड सम्बन्धो मे स्थायी बिगाड हो गया। राव जोधा ने राठोड योद्धाओ एव अपने परिजनो की वीरता और साहस तथा उनकी महत्वाकाक्षाओ का राठोड शक्ति के विस्तार के लिये उपयोग किया, उनको नये-नये क्षेत्र विजय करने के लिये प्रोत्साहित किया और विजय के बाद उनको स्वत्व प्रदान किये तथा उनके बीच सदैव शान्ति, मेल और समानता कायम रखी। महाराणा कुम्भा के समय राजपूताने मे सिसोदिया शक्ति के उत्कर्ष एव राव जोधा द्वारा मारवाड मे राठोड-शक्ति के विस्तार के बाद सिसोदिया एव राठोड शक्तियो के बीच जो मैत्री सन्धि हुई और जिसका खानवा के युद्ध तक पालन किया गया, उससे यह सिद्ध हो गया था कि सिसोदिया-राठोड शक्तियो की मैत्री

---

1. जयमल वश प्रकाश, भाग 1, 73। कविराजा बाकीदास के हस्तलिखित ऐतिहासिक वृत्तान्तो मे उनको कही कही 'राजा' की पदवी से विभूषित होना लिखा गया है।

की धुरी पर राजपूताने एवं मध्यभारत की तमाम राजपूत शक्तियों को एकताबद्ध और सगठित किया जा सकता है, इस भू-भाग मे पारस्परिक कलह को शान्त किया जा सकता है और दिल्ली, मालवा एव गुजरात की मुसलमान शक्तियों के दबाव को रोका जा सकता है। किन्तु मालदेव ने अपनी शक्ति के विस्तार के लिये उक्त नीति को बदल दिया। इन्होंने प्रारम्भ से ही मेडता एव बीकानेर की स्वाधीनता समाप्त करने के लिये जो कदम उठाये उनसे राठौड शक्तियों के बीच स्थायी वैमनस्य और वैर-भाव पैदा हो गये। राठौड सामन्तो मे कलह और फूट पैदा हो गये और उनका सगठन और एकता का मूल मत्र के लिये टूट गया। सयुक्त-राठौड सत्ता के निर्माण एव सचालन के बड़े उद्देश्य को तिलाजली दे दी गई और अधिकाधिक जमीन और जागीर प्राप्त करने के लिये क्षुद्र गुटबाजी और स्वार्थपरता घर करती गई। शासक अपनी शक्ति को सुदृढ एव सुरक्षित रखने के लिये सामन्तो के क्षुद्र स्वार्थों को बढ़ावा देकर उनकी फूट और गुटबाजी को आधार बनाने लगे और सामत लोग राज्य मे अपनी शक्ति और प्रभाव को अधिकाधिक बढाने के लिये ऐसे गुट बनाने लगे जिसके द्वारा वे राजा को शक्तिहीन और अपने हाथ की कठ-पुतली बना कर रख सके। इस स्थिति से न केवल राठौड सत्ता शक्तिहीन हुई अपितु उसने राजपूताने और देश की राजनीति म राजपूत शक्तियों को श्रीहीन कर दिया और दिल्ली मे विदेशी शक्ति को जमने मे मदद दी। यह वह समय था जबकि एक ओर खानवा युद्ध के आघात से मेवाड अभी सभल नही पाया था और गृहकलह मे उलझ रहा था तथा मालवा और गुजरात की ओर से आक्रमण का शिकार हो रहा था, दूसरी ओर दिल्ली मे मुगल शासन जम नही पाया था। यदि अस्थिरता और अनिश्चितता के इस काल मे मालदेव जैसे योग्य एव वीर सेनापति और शक्तिशाली शासक द्वारा महाराणा सागा के बाद उनके रिक्त स्थान को भरकर सिसोदिया-राठौड शक्तियों की मैत्री को कायम रखते हुए राजपूताने का नेतृत्व अपने हाथ मे लेकर मारवाड, मेवाड, बीकानेर, मडता तथा अन्य छोटी मोटी राजपूत शक्तियों के बीच परम्परागत मेल और सहयोग की नीति अपनाई जाती तो निरसदह ही भावी इतिहास का स्वरूप कुछ और ही होता।

मेवाड और मेडता के सबधो को प्रगाढ बनाने की दृष्टि से एक और घटना हुई। राव वीरमदेव ने अपने कनिष्ठ भ्राता रत्नसिंह की पुत्री मीराबाई का विवाह वि स 1573 म राणा सागा के छोटे पुत्र भोजराज के साथ कर दिया।[1] आने वाले समय मे जब मेडतिया राठोडों को भीषण दुर्दिन देखने पडे, उस समय

1. गौ० ही० ओझा-उदयपुर का इतिहास, प्रथम भाग-पृ० 358

मेवाड राजपरिवार के साथ उनके सम्बन्ध बहुत काम आये और मेडतिया राठोडो ने भी मेवाड की संकट के समय बड़ी वीरता और बलिदान के साथ सेवा की।

वि स. 1574 (ई 1517) मे जब मेवाड के महाराणा सागा ने माडू के प्रधान मंत्री मेदिनीराय की मदद के लिये गुजरात के सुलतान मुजफ्फरशाह के विरुद्ध आक्रमण के लिए प्रस्थान किया, उस समय वीरमदेव ससैन्य उनके साथ शामिल हुए। दो वर्ष बाद गागरोन पर मालवे के सुलतान महमूद द्वारा आक्रमण किये जाने पर महाराणा सागा ने सुलतान को गागरोन के निकट युद्ध मे बुरी तरह पराजित कर उसको कैद कर लिया। मेडता राव वीरमदेव इस युद्ध मे अपने सैनिको सहित राणा की ओर से लडे। वि० स० 1577 (1520 ई०) मे महाराणा सागा ने गुजरात के सुलतान मुजफ्फरशाह द्वारा ईडर के राजा रायमल को राज्यच्युत किये जाने पर रायमल की सहायता के लिये ईडर की ओर कूच किया। इस सफल अभियान मे जोधपुर के राव गागा सात हजार सैनिक लेकर तथा मेडता के राव वीरमदेव पाच हजार सैनिक लेकर महाराणा की सहायता के लिये शामिल हुए थे। उसी वर्ष महाराणा ने गुजरात और मालवा की सयुक्त सेनाओ को मदसौर से हटाने के लिये प्रयाण किया, उसमे भी मेडता के राव वीरमदेव अपने सैनिक सहित शरीक हुए थे।[1]

चैत्र सुदी 14, 1584 (17 मार्च, 1527 ई०) को भारतीय इतिहास का परिवर्तनकारी खानवा का प्रसिद्ध युद्ध हुआ। मुगल बादशाह बाबर के विरुद्ध महाराणा सागा के साथ लडने वालो मे मेडता राव वीरमदेव ससैन्य मौजूद थे।[2] सागा की ओर से लडने वाले राजपूताने के अन्य नरेशो मे मारवाड का राव गागा, आमेर का राजा पृथ्वीराज, ईडर का राजा भारमल, डूगरपुर का रावल उदयसिंह आदि तथा चदेरी का स्वामी मेदिनीराय, देवलिया का रावत बाघसिह, बीकानेर का कुवर कल्याणमल, बूदी का नरबद हाडा, मेवात का हसनखा, सिकन्दर लोदी का पुत्र महमूदखाँ, अन्तरवेद का चौहान चन्द्रभाण, रायसेन का सलहदी पूर्बिया

---

1 जयमल वश प्रकाश, भाग 1, पृ० 74

2 बाबर ने अपनी दिनचर्या की पुस्तक मे राणा सागा की सेना के सम्बन्ध मे जो आकडे दिये हैं, उनमे राव वीरमदेव के सैनिको की सख्या 4000 होना बताया है। जोधपुर के राव गागा के सैनिको की सख्या 3000 होना लिखा है।

तथा ग्वालियर अजमेर, सीकरी, कालपी, गागरोन, रामपुरा, आबू आदि के अधिपति थे ।[1]

खानवा के युद्ध में तोपों की मार एवं नवीन व्यूहरचना के कारण बाबर की विजय हुई और तत्कालीन भारत की सबसे बड़ी राजपूत शक्ति को भारी धक्का लगा और वह बिखर गई जिसको पुन एकतावद्ध नहीं किया जा सका। इससे दिल्ली में मुगल सल्तनत की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हो गया। खानवा युद्ध के बाद तत्कालीन राजपूताने का सबसे बड़ा राज्य, मेवाड और लगभग एक सौ वर्षों से राजपूत संघ का नेतृत्व करने वाली सिसोदिया शक्ति लगभग दस वर्षों तक (1528 से 1537) गृह-कलह में उलझी रही। मेवाड में रत्नसिंह, विक्रमादित्य और बणवीर के अल्पकालीन शासनों के बाद वि स 1594 (1537 ई०) में महाराणा उदयसिंह (1537-1572 ई) मेवाड के शासक बने। उदयसिंह के शासनकाल में मेवाड में पुन स्थायित्व एवं व्यवस्था पैदा हुई, किन्तु न तो मेवाड पुन अपनी गौरवशाली स्थिति को प्राप्त कर सका और न पुरानी नीतियों पर अमल कर सका। जैसा कि ऊपर कहा गया है मारवाड के शासक मालदेव[2] (1531-1562 ई०) की महत्वाकांक्षी और राजपूत मैत्री विरोधी नीति के कारण भी राजपूत संघ पुनर्जीवित नहीं हो सका।[3] 1543-44 ई० में मारवाड पर शेरशाह के आक्रमण की सफलता ने (इस आक्रमण में मालदेव के राठौड भाई-बन्धु, मेडता के वीरमदेव और बीकानेर के राव कल्याण शेरशाह के साथ थे) मालदेव की नीतियों को धराशायी कर दिया। राठौड़ों का गृह-युद्ध तथा मेवाड-मारवाड

1 खानवा की लड़ाई में राव वीरमदेव के छोटे भाई एवं मीराबाई के पिता रत्नसिंह महाराणा सांगा की ओर से लड़ते हुए मारे गये थे। वीर विनोद, दूसरा भाग, पृ० 9

2 मालदेव एक प्रबल योद्धा एवं सेनापति थे और महाराणा सांगा की मृत्यु और सिसोदिया शक्ति के कमजोर होने के बाद उन्होंने मारवाड राज्य को विस्तृत कर राजपूताने की प्रथम शक्ति बना दिया था किन्तु तत्कालीन राजनैतिक स्थितियों में उनकी नीतियाँ दूरदर्शी नहीं सिद्ध हुई और बारह वर्ष बाद ही उनके दुष्परिणाम प्रकट होने लगे।

3 मालदेव ने अपने शासन के प्रथम वर्ष 1532 ई० में गुजरात के बादशाह बहादुरशाह द्वारा चित्तौड पर चढ़ाई करने पर महाराणा विक्रमादित्य की सहायतार्थ अपनी सेना भेजी थी। किन्तु बाद में यह क्रम बन्द हो गया।

के बीच कलह चलते रहे। अन्त मे दूरदर्शी मुगल बादशाह अकबर ने राजपूत शक्तियो के बीच फूट को बढ़ावा देने तथा राजपूत राज्यो मे विद्रोही तत्वो को अपने दरबार मे स्थान और लालच देने की नीति द्वारा मेवाड को छोडकर शेष राजपूत शक्तियो को सदैव के लिये मुगल शासन के जुए मे जोत दिया।

वि स 1589 (1532 ई०) मे जब गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने चित्तौड पर आक्रमण किया, उस समय मेवाड की सहायता के लिये वीरमदेव ससैन्य चित्तौड पहुचे। इस समय जोधपुर और बूदी की सेनायें भी मेवाड की सहायता के लिये भेजी गई थी। उस समय राजमाता हाडी कर्मवती ने बहादुरशाह से सन्धि कर ली और बहादुरशाह लौट गया।

मालदेव के शासनारूढ होने से पूर्व मालदेव के पिता राव गागा के तीसरे भाई सेखा ने, जिनको जोधपुर राज्य की ओर से पीपाड ग्राम मिला हुआ था, जोधपुर पर अपना अधिकार करने के लिये नागोर के किलेदार दौलतखा को साथ लेकर जोधपुर पर आक्रमण किया। बीकानेर के राव जैतसिंह राव गागा की मदद के लिये आये किन्तु पारस्परिक वैमनस्य के कारण मेडता के राव वीरमदेव इस युद्ध मे तटस्थ रहे। सेखा और दौलतखा पराजित हुए। ऐसा कहा जाता है कि युद्ध मे दौलतखा के हाथी दरियाजोश की आख मे तीर लग जाने से वह भागता हुआ मेडता पहुचा। जहा वीरमदेव ने उसको पकड लिया।[1] जब राजकुमार मालदेव हाथी लेने मेडता पहुचा तो वीरमदेव ने इन्कार कर दिया।

किन्तु मालदेव के शासनारूढ होने के बाद ही राव वीरमदव द्वारा मालदेव से सहयोग करने का वर्णन मिलता है। जब राव मालदेव ने भाद्राजन के सिंधलो पर सेना भेजी तो राव वीरमदेव ने अपनी सेना के साथ जाकर इसमे सहयोग दिया।

---

1 जयमल वश प्रकाश, भाग 1, पृ० 86। किन्तु प० विश्वेश्वरनाथ रेऊ ख्यातों के आधार पर लिखा है कि वीरमदेव ने दौलतखा का हाथी पकडकर रख लिया था। इससे चतुर मालदेव ने दौलतखाँ को मडता पर आक्रमण करने के लिये उकसाया। जब दौलतखाँ ने मडता पर अधिकार करने के लिये चढाई की उस समय मालदेव न मौका देखकर नागोर पर अधिकार कर लिया। (मा० रा० इ० भाग 1, पृ० 118) जयमल वश प्रकाश म लिखा है कि जोधपुर से राजकुमार मालदेव हाथी लेने मडता पहुँचे तो वीरमदेव न उनको न देकर हाथी दौलतखां के पास नागौर भिजवा दिया था।

राव मालदेव ने भाद्राजन एव रायपुर के सिधलो को पराजित कर वहां अपना अधिकार कर लिया।[1]

वि स 1591 (1535 ई) म वीरमदेव ने मुअवसर देखकर गुजरात के बादशाह बहादुरशाह के हाकिम शमशेरुल मुल्क को हटाकर अजमेर पर अधिकार कर लिया। राव मालदेव ने वीरमदेव को कहलाया कि वह सुरक्षा की दृष्टि से अजमेर को जोधपुर के अन्तर्गत उनको सुपुर्द कर दे। किन्तु वीरमदेव ने इसको स्वीकार नही किया। इस पर मालदेव ने मेडता पर चढाई कर दी। वीरमदेव भी युद्ध के लिये तैयार हो गये। किन्तु लोगो के समझान पर वीरमदेव मेडता छोडकर अजमेर चले गये और मालदेव न मेडता पर अधिकार कर लिया।[2]

मेडता पर अधिकार हो जान पर मालदेव न राठोड वरसिंह के पौत्र सहसा को रीया की जागीर दी। इससे नाराज होकर वीरमदेव ने रीया पर चढाई कर दी। किन्तु नागोर स मालदेव द्वारा भेजी गई सना के पहु च जाने से वीरमदेव पराजित होकर अजमेर लौट आये। इसके बाद ही वि स 1591 मे मालदेव के सेनापति जेता और कूपा अजमेर पर चढ आये। वीरमदेव को पराजित होकर अजमेर छोडना पडा।

अजमेर हाथ से निकल जाने के बाद वीरमदेव को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकना पडा और राव मालदेव के सैनिक उनका पीछा करते रहे। पहले व डीडवाना गये वहा से फतहपुरा, भ भणू के मार्ग मे नराणा गाव मे कछवाहा राममल के पास ठहरे। उसके बाद उन्होने बोथल और बणहडा नाम के गावो पर अधिकार करके वहा रहने लगे। जब मालदेव को इसका पता चला तो उन्होने वहा भी सेना भेज दी। इस पर वीरमदेव वि स 597 (1540 ई) म माडू के बादशाह कादिर के पास चले गये। वहा से उनकी सलाह मे वह दिल्ली के बादशाह शेरशाह (जिसने 1539 ई मे हुमायू को पराजित कर दिया था) से मिलने के लिए रवाना हुए। दिल्ली मे उनकी बीकानेर के राव जैतसी के छोटे पुत्र भीमराज से भेंट हुई और वे दोना मिलकर शेरशाह को मालदेव के विरुद्ध भडकाने लगे।

इधर मालदेव ने मेवाड और जयपुर के कई इलाका पर अधिकार जमाने के बाद वि स 1598 (1541 ई) मे बीकानेर पर चढाई की और उस पर कब्जा कर लिया वहाँ का शासक राव जैतसी युद्ध म मारा गया। राव जैतसी के पुत्र कल्याणमल और भीमराज बचकर सिरसे पहुचे।

---

1 प० विश्वेश्वरनाथ रउ-मा रा इ भाग 1, पृ 116, ओझा-5 280

2 वही, पृ 118, 119

इसके कुछ समय बाद वि स. 1599 (1542 ई) मे हुमायूं शेरशाह के विरुद्ध मालदेव की सहायता प्राप्त करने के लिये मारवाड में आया और मालदेव से बातचीत की। जब शेरशाह को इसका पता चला तो उसने मालदेव को अपनी ओर मिलाने की कोशिश की। इससे हुमायू को सदेह हो गया और वह फलोदी होता हुआ उमरकोट की ओर चला गया।

राव वीरमदेव और भीम के आग्रह तथा मालदेव की बढती हुई शक्ति को देखते हुए वि स. 1600 (1543 ई.) म शेरशाह ने मारवाड पर चढाई कर दी। जब शेरशाह ने मालदेव की विशाल सेना को देखा तो वह पीछे हटने की सोचने लगा। किन्तु वीरमदेव ने शेरशाह से मिलकर एक कपट-जाल रचा। मालदेव के बडे-बडे सरदारो के नाम बादशाह की ओर से झूठे फरमान बनाकर उनकी सेना मे भेजे गये, जिन्हे देखकर राव मालदेव सशंकित होकर रात्रि मे ही पीछे लौट पडे। दूसरे दिन बचे-खुचे राठोड सैनिको ने शेरशाह के सैनिको का मुकाबला किया। शेरशाह उनको पराजित करता हुआ जोधपुर पहुचा और वि स 1601 (1544 ई) मे जोधपुर के किले पर भी कब्जा कर लिया। इसी अवसर पर शेरशाह ने मेडता राव वीरमदेव को और बीकानेर राव कल्याणमल को लौटा दिया।

मेडता वापस प्राप्त करने के दो माह पश्चात ही राव वीरमदेव का स्वर्गवास हो गया। राव वीरमदेव बडे वीर, उदार और नीतिज्ञ शासक थे। वे स्वाभिमानी और स्वाधीनता प्रेमी थे। मेवाड के नेतृत्व मे परम्परागत राजपूत सगठन मे उनका पूरा विश्वास था। यही कारण है कि महाराणा सागा की मृत्यु के बाद भी वीरमदेव बराबर मेवाड की सहायता के लिये स्वय जाते रहे अथवा अपने सैनिक भेजते रहे। स्वाधीनता एव समानता के विचारो के प्रेमी होते हुए भी वे राठोड शक्तियो के पारस्परिक सगठन एव सहयोग मे विश्वास रखते थे, जिसम वे जोधपुर के शासक की प्रधानता एव नेतृत्व के विमुख नही थे। उन्होने और बीकानेर के शासक ने निरतर जोधपुर के शासको का साथ दिया। मालदेव के शासन के प्रारम्भ मे ही सिंधलो के विरुद्ध लडाई म राव वीरमदेव ने राव मालदव का साथ दिया था। किन्तु यह भी सही है कि वे मालदेव की नीति के अनुसार मेडता पर अपना स्वत्व छोडकर जोधपुर का एक सामान्य सामन्त बनने के लिये भी तैयार नही थे। जिस भांति राठोड सत्ता का प्रादुर्भाव और प्रसार हुआ और राठोड राजपरिवार मे जो परिपाटिया और परम्परा बनी, उनके अनुसार राव मालदेव द्वारा किये गये इस प्रयास को दुस्साहस और अदूरदर्शिता पूर्ण कार्य ही कहा जायगा। इसके कारण उन्होंने वीरमदेव जैसे साहसी, वीर एव विश्वासपात्र सहयोगी को न केवल खो दिया

अपितु वीरमदेव का जिस प्रकार पीछा किया गया इसके कारण वे मालदेव के कट्टर शत्रु हो गये, उसके कारण मारवाड़ को बहुत हानि हुई।

मेवाड़ नरेशों को वीरमदेव की विश्वासपात्रता और शूरवीरता का बराबर लाभ मिला। मेवाड़ के साथ उनके संबंध अत्यन्त प्रगाढ़ होते गये। इसके कारण मेवाड़ को आने वाले समय में मेड़तिया राठोड़ों की चिरस्मरणीय सेवायें सुलभ हुई।

राव वीरमदेव के सोलह पुत्र माने जाते हैं जिनमे इतिहास-प्रसिद्ध जयमल ज्येष्ठ थे। उनके अन्य कुंवरों में-ईश्वरदास, जगमाल, चांदा, करण, अचला, ईसर, सारंगदेव, प्रतापसिंह, माड़ण, सेखा, खीमकरण के नाम मिलते हैं। जिनके वंशधरों के अधिकार में मेवाड़ और मारवाड़ में कई छोटे बड़े ठिकाने रहे। कुंवर प्रतापसिंह का जन्म महाराणा रायमल की पुत्री गोरज्या कुंवरी से हुआ, जिनको महाराणा द्वारा जनोद (?) का ठिकाना दिया गया और जिनके वंशज ही आगे जाकर घाणेराव के स्वामी हुए।



1 बांकीदास की ख्यात में जैमल, सारगदे, ईसर, कान, चांदो, मांडण, पृथीराज, खेमकरण, जगमाल, प्रतापसिंघ, और सेखो नाम दिये गये हैं (पृ. 60)

ठाकुर प्रतापसिंह

राव वीरमदेव के देहावसान के बाद वि स 1600 (1544 ई) मे उनके ज्येष्ठ पुत्र जयमल मेडता के स्वामी हुए। राज्याभिषेक के समय उनकी अवस्था 36 वर्ष से कुछ अधिक थी। मेडतिया राठौड वश मे राव जयमल अपने साहस, शौर्य और बलिदान के लिये न केवल राजपूताने अपितु भारतवर्ष के इतिहास मे अत्यधिक प्रसिद्ध हो गये हैं।[1] उन्होने अपने शूरवीरतापूर्ण कार्यों से मेवाड के इतिहास का गौरव बढाया।

राव मालदेव मेडता पर वीरमदेव अथवा उनकी सन्तानो का अधिकार किसी भी प्रकार स्वीकार करने को तैयार नही थे। जब वि० स० 1602 (1545 ई०) मे शेरशाह की मृत्यु हो गई तो इस स्थिति का लाभ उठाकर तत्काल ही राव मालदेव ने जोधपुर पर पुन अधिकार कर लिया और धीरे-धीरे अपनी शक्ति म वृद्धि करके वि० स० 1605 (1548 ई०) म अजमेर को पुन हस्तगत कर लिया। अजमेर विजय के समाचार सुनकर मेवाड के महाराणा उदयसिंह भी अजमेर पर अपना अधिकार स्थापित करने के लिये सेना लेकर बढे। राव जयमल भी अपने सैनिक लेकर महाराणा की सना मे शामिल हुए। किन्तु इस युद्ध मे

1 समकालीन फारसी इतिहास लेखक अबुल फजल, निजामुद्दीन अहमद, बदायुनी, फरिश्ता आदि लेखको ने राव जयमल के शौर्य और वीरता की मुक्त कठ स प्रशसा की है, जबकि उन्होंने विरोधी पक्ष के योद्धाओ के सम्बन्ध मे अधिकाशत, निन्दात्मक वर्णन ही किया है। कर्नल टाड, स्ट्रेटन, वाल्टर लेनपूल तथा विन्सेन्ट स्मिथ जैसे पश्चिमी इतिहास लेखको ने उनके जीवनचरित का अपने इतिहास मे गौरवपूर्ण वर्णन किया है।

महाराणा की सेना पराजित हुई और वे वापस लौट गये।[1] इससे दो बातें प्रकट होती हैं, प्रथम मेडता एवं जोधपुर के बीच अब कट्टर शत्रुता पैदा हो गई थी और मेवाड के महाराणा और मेडता के राठोड राजपरिवार के बीच अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध बन चुके थे। दूसरे, मेवाड और जोधपुर के सम्बन्धो मे इतनी कटुता आ गई थी, कि वे हर हालत मे यहा तक कि मुसलमान शक्तियो का साथ लेकर भी एक दूसरे को नीचा दिखाने एव कमजोर करने पर तुले हुए थे। निस्सदेह ही इसका लाभ राजपूताने के बाहर की शक्तियो को मिलता गया। मालदेव द्वारा अपने बाधवों के साथ ही असहिष्णुता एव वैरभाव के कारण वीरमदेव एव बाद मे उनके पुत्र जयमल दिल्ली के बादशाहो से सहायता मागने गये। मेवाड की पहिले की प्रभावकारी शक्ति एव मेल की नीति समाप्त हो चुकी थी। इसमे पहिले शेरशाह का प्रभाव राजपूताने मे स्थापित हुआ, बाद मे चतुर कूटनीतिज्ञ अकबर ने तो इस स्थिति का लाभ उठाकर सारे राजपूताने पर अपना प्रभाव जमा लिया।

मेवाड की सेना के पराजित होने पर राव जयमल सेना के साथ वापस मेवाड लौटे। मेडते पर सम्पूर्ण अधिकार करने के लिये राव मालदेव ने वि० स० 1610 (1553) मे मेडते पर चढाई की और किले को घेर लिया।[2] किन्तु बीकानेर से राव कल्याणमल की सेना के पहुंचने से जोधपुर की सेना को पराजित होकर पीछे हटना पडा। अगले वर्ष देवीदास और कुंवर चन्द्रसेन के नेतृत्व मे जोधपुर की सेना ने पुन मेडता घेर लिया, उस समय मेवाड के महाराणा उदयसिंह ने, जो बीकानेर मे राव कल्याणमल की पुत्री से विवाह करने जा रहे थे, युद्ध रुकवाकर एव जयमल को समझा-बुझाकर अपने साथ बीकानेर ले गये। उनकी अनुपस्थिति मे जोधपुर की सेना ने मेडता पर कब्जा कर लिया।[3] मेडता से वचित हो जाने पर राव जयमल को महाराणा उदयसिंह ने अपने राज्य मे वि० स० 1611 (1554 ई.) मे 1000 ग्रामो सहित बदनोर की जागीर प्रदान की।[4] किन्तु मेडता

---

1 रेऊ, पृ० 138

2 रेऊ, पृ० 134। जयमल वश प्रकाश मे इस घटना का वि० स० 1603 (1546 ई०) मे होना लिखा है (पृ० 115)। ओझा ने इस घटना का उल्लेख नही किया है।

3 रेऊ पृ० 135। जयमल वश प्रकाश, पृ० 119

4 रणछोड भट्ट कृत 'अमरकाव्यम्' हस्त० प्रति०
जयमल वश प्रकाश, पृ० 119

का स्वाधीन प्रदेश खो देने को वे भूल नही सके और मेडता पुन प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगे ।

वि० स० 1613 (1557 ई०) मे जोधपुर के राव मालदेव का अजमेर के हाजीखाँ से झगडा हो गया और उन्होंने अजमेर पर चढाई की। महाराणा उदयसिंह मालदेव के विरुद्ध हाजीखाँ की मदद करने गये। उस समय महाराणा की मदद से जयमल ने एक बार फिर मेडता पर अधिकार कर लिया। किन्तु आगामी वर्ष जब महाराणा और हाजीखाँ के बीच झगडा हो गया। महाराणा ने बीकानेर के राव कल्याणमल और मेडता के राव जयमल को साथ लेकर अजमेर पर चढाई की। इस पर मालदेव हाजीखाँ की मदद के लिये आये। 24 जनवरी, 1557 ई के दिन हरमाडा युद्ध मे महाराणा की सेना की पराजय हुई। इस युद्ध के बाद राव मालदेव ने पुन मेडता पर अधिकार कर लिया।[1] मालदेव ने पहिले के राजभवनो आदि को गिराकर मेडता म नया दुर्ग, मालकोट बनवाया और नगर को नये सिरे से बसाया।

इधर दिल्ली पर वि० स० 1611 (1555) मे मुगल बादशाह हुमायू का अधिकार हो गया और आगामी वर्ष उसकी मृत्यु हो जाने पर उसका पुत्र अकबर दिल्ली का बादशाह बना। बादशाह अकबर ने वि० स० 1615 (1558) म सेना भेजकर अजमेर पर अधिकार कर लिया। उसके बाद बादशाह ने जैतारण भी ले लिया। हरमाडा युद्ध के बाद मेडता वापस प्राप्त करने के लिये जयमल ने मुगल बादशाह का सहारा लिया था। इसीलिये जब शाही सेना जतारण पर चढकर आई उस समय शाही सेना के साथ राजा भारमल, पृथ्वीराज राठोड, जयमल आदि भी थे।[2]

वि स 1618 (1562 ई) म अकबर की आज्ञा से मुगल सेना ने मेडता पर आक्रमण किया और मालदेव के सैनिको को पराजित कर मेडता पर अधिकार कर लिया। उस समय मुगल अधिकारी मिर्जा शरफुद्दीन ने मडता राव जयमल को सौंप दिया। उसी वर्ष राव मालदेव की मृत्यु हो गई। किन्तु राव जयमल

1 रेऊ पृ० 137। ओझा जो० रा० इ०, पृ० 320

2 ओझा जो० रा० इ०. पृ० 321। रेऊ के अनुसार जयमल अकबर के पास वि० स० 1618 (1561 ई०) म पहुचा और अपना पैतृक राज्य मेडता वापस दिलाने के लिये सहायता मागी।

का मेडता मे रहना नही बदा था। अजमेर के मुगल अधिकारी मिर्जा शरफुद्दीन के बागी हो जाने पर जब वह शरण के लिए मेडता चला आया तो बादशाह को सन्देह हो गया जिससे मेडता जयमल के हाथो से निकल गया। इसके बाद वे मेडता की आशा छोड कर स्थायी रूप से मेवाड चले गये, जहाँ उनको पुन बदनोर की जागीर प्रदान की गई।[1]

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, राव वीरमदेव के एक अन्य पुत्र[2] एव जयमल के छोटे भाई प्रतापसिंह थे, जो मेवाड़ के महाराणा रायमल के दौहित्र थे। महाराणा रायमल के दौहित्र होने के कारण अपने बहनोई महाराणा सागा और मेवाड के राजपरिवार के साथ उनके निकट के सबध रहे।[3] इन वीरमदोत प्रतापसिंह से मेडतिया घाणेराव शाखा का प्रादुर्भाव हुआ।

प्रतापसिंह के जन्म एव बाल्यकाल के सम्बन्ध मे कोई जानकारी उपलब्ध नही है। वे अपने बाल्य-काल से ही तत्कालीन राजनैतिक उथल-पुथल उतार-चढाव एव विजय-पराजय तथा स्वाधीन मेडता राज्य को कायम रखने के लिये चलने वाले अनवरत कलह और युद्धो के स्वाभाविक भागीदार रहे।

---

1 मेवाड के लिये यह कहावत प्रसिद्ध रही है कि वह राजपूतों की माँ और बागियों का शरणस्थल है। मेवाड के महाराणाओं ने राजपूताने अथवा राजपूताने के बाहर से जो भी राजपूत मेवाड में सेवा के लिये आये, उनको उनकी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार जागीरें प्रदान करके सेवा में रखा। मालवा का बाजबहादुर एव गुजरात मे मिर्जा बन्धुओ आदि ने भी महाराणा उदयसिंह के समय मेवाड में शरण प्राप्त की थी। उससे पूर्व महाराणा सागा के समय गुजरात के सुलतान के शाहजादे ने चित्तौड मे शरण ली थी।

2 बाकीदास की ख्यात के अनुसार प्रतापसिंह वीरमदेव के 10 वें पुत्र थे। (पृ० 60) जयमल वश प्रकाश मे भी उनको दसवा पुत्र बताया गया है।

3 वीरमदेव की तीन पुत्रियो का विवाह मेवाड मे हुआ था। राजकुमारी श्याम कुवरि का विवाह महारिया के रावत सागा से, राजकुमारी फूलकुवरि का विवाह सेनवा के विख्यात वीर पत्ता सीसोदिया से और राजकुमारी अभय कुवरी का विवाह बयगर के राव राघवदेव चौहान से हुआ था। (जयमल वश प्रकाश, पृ० 106, 107) इससे भी वीरमदेव और उनकी पुत्रियों के मेवाड के साथ स्थापित घनिष्ठ सबधो का पता चलता है।

यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि कुवर प्रतापसिंह ने खानवा के युद्ध मे भाग लिया अथवा नही। किन्तु यह निश्चित लगता है कि खानवा के युद्ध के बाद जो अनिश्चित स्थिति मेवाड मे पैदा हो गई और 1535 ई मे मेवाड पर गुजरात के बादशाह बहादुरशाह के आक्रमण का खतरा पैदा हुआ उस समय वीरमदेव ने कुवर प्रतापसिंह को चित्तौड भेज दिया था। बहादुरशाह के विरुद्ध वीरमदेव स्वय मेवाड की सहायता के लिए चित्तौड आये थे। उस समय हाडी राजमाता ने बहादुरशाह से समझौता कर लिया। दुबारा जब बहादुरशाह ने चित्तौड पर चढाई की उस समय वीरमदेव स्वय नही आये। कुवर प्रतापसिंह ने मेडतिया राठोड सैनिको का नेतृत्व किया था। यह सभव है उसके बाद महाराणा उदयसिंह के राजतिलक (1573 ई) तक के बीच के समय मे कुवर प्रतापसिंह मेडता लौट गये हो, जबकि मेडता जोधपुर कलह बढ रहा था और वीरमदेव को उस समय प्रतापसिंह की सहायता की जरूरत पडी हो। किन्तु यह निश्चित है कि 1538 ई. मे जब वीरमदेव को मेडता छोडना पडा और उसके बाद अजमेर के हाथ से निकल जाने के कारण उनको भारी सकटो के बीच एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकना पडा, उस समय कुवर प्रतापसिंह महाराणा उदयसिंह के पास चले गये थे। इसके बाद वे उन्ही की सेवा मे रहे।

वि स 1594 (1537 ई) मे जब मेवाड के महाराणा उदयसिंह का कुभलगढ मे मेवाड के प्रमुख सामतो द्वारा तिलक किया गया और उन्होने सेना एकत्रित कर बणवीर को चित्तौड से निकालने के लिये कूच किया, उस समय पाली का सोनगरा अखैराज[1] अपने साथ राठोड कूपा महराजोत आदि राठोड सरदारो को लेकर उदयसिंह की सेना मे शामिल हुआ था। उस समय प्रतापसिंह वीरमदेवोत के नेतृत्व मे मेडतिया राठोड सैनिको की टुकडी भी उनके साथ थी। इस सेना ने बणवीर को पराजित कर चित्तौड ले लिया और 1540 ई म उदयसिंह का चित्तौड मे विधिवत राज्याभिषेक हुआ।

जैसाकि ऊपर कहा गया है, महाराणा उदयसिंह और जोधपुर के राठोड शासक राव मालदेव के बीच कलह मे मेडता के राव वीरमदेव की नीति का अनु-

---

1 ऐसा माना जाता है कि राजतिलक के पूर्व पाली के स्वामी सोनगरे चौहान अखेराज ने अपनी पुत्री जयवन्तीबाई का विवाह उदयसिंह से कर दिया था, जिसके गर्भ से भारतीय इतिहास के चिरस्मरणीय वीर एव स्वतन्त्रता-सेनानी महाराणा प्रतापसिंह का जन्म हुआ।

सरण करते हुए उनके पुत्र एव उत्तराधिकारी राव जयमल ने भी राव मालदेव के विरुद्ध मेवाड के महाराणा का साथ दिया था। स्वभावत उस समय प्रतापसिंह ने, जो मेवाड मे ही रह रहे थे, अपने आदमियो के साथ राव मालदेव के साथ राव मालदेव के विरुद्ध लडाईयो मे महाराणा उदयसिंह का साथ दिया। इसी भांति महाराणा उदयसिंह द्वारा की गई अन्य लडाईयो मे तथा मेवाड राज्य मे शान्ति एव व्यवस्था के लिए की गई कार्यवाहियो मे प्रतापसिंह का पूरा योगदान रहा।

बाकीदास ने लिखा है कि महाराणा उदयसिंह ने प्रतापसिंह वीरमदेवोत की मेवाड राज्य के प्रति सेवाओ से प्रसन्न होकर पचास हजार की आय की 'जनोद' की जागीर प्रदान की।[1] जयमल वश प्रकाश मे लिखा है कि महाराणा उदयसिंह ने उनको 'चाणोद' जागीर प्रदान की थी। जयमलवश प्रकाश की अधिकाश सामग्री का स्रोत जयमल की बदनोर मेडतिया शाखा, (जयमल को महाराणा उदयसिंह ने बदनोर परगना जागीर मे दिया था) की प्राचीन पत्रावलिया रही है जो इतिहास सम्मत है। चाणोद गोडवाड प्रदेश का अत्यन्त उपजाऊ एव सम्पन्न परगना था। महाराणा ने अपने सबधी प्रतापसिंह को जागीर देते समय इसका अवश्य ध्यान रखा होगा, किन्तु इसके साथ ही यह निर्णय राजनैतिक तौर पर एक और दृष्टि से युक्तियुक्त था। मेवाड के गोडवाड प्रदेश से सटा हुआ मारवाड का भूभाग राठोडो के अधीन था जो जोधपुराधीश के अधिकार मे था। उनके परिजन मेडतावशी राठोडो का जोधपुर

---

1 बाकीदास की ख्यात मे लिखा है– प्रतापसिंघ वीरमदेवोत मेडतियानू राणाजी पचास हजार रा पट्टा मू गाव जनोद मेवाड को दियो।

- घाणेराव की प्राचीन प्रशावली मे उल्लेख मिलता है कि मेवाड मे सुव्यवस्था और शाति स्थापित होने के बाद वि० स० 1908 (1551 ई०) के लगभग महाराणा उदयसिंह ने प्रतापसिंह को 'जनोद' की वार्षिक तीन लाख की आय की जागीर प्रदान की। किन्तु 'जनोदे' गाव के विषय मे कोई जानकारी उपलब्ध नही है।

जयमल वश प्रकाश मे उल्लेख है कि महाराणा ने उनको पचास हजार रुपये वार्षिक आय का 'चाणोद' का परगना जागीर मे प्रदान किया।

बाकीदास द्वारा उल्लिखित जनोद' वास्तव मे गोडवाड इलाके का सम्पन्न परगना 'चाणोद' ही होना चाहिये, क्योकि मेवाड मे जनोद नामक गाव का कहीं उल्लेख नही मिलता।

राजवश से पक्का वैर हो गया था और वे मेवाड राजवश के सर्वाधिक विश्वसनीय सामत बन गये थे। मारवाड की आन्तरिक स्थितियो को समझने वाले और राठोड गतिविधियो से अवगत रह सकने वाले किसी पक्के विश्वसनीय व्यक्ति को उस समय गोरवाड इलाके की जागीर देना गोडवाड, कुम्भलगढ तथा मेवाड प्रदेश के देसूरी के पर्वतीय मार्ग की सुरक्षा की दृष्टि से निस्सदेह ही अत्यन्त सूझबूझ का काम था। मेवाड की दृष्टि से यह निर्णय दूरदर्शितापूर्ण सिद्ध हुआ। आगे के दो सौ वर्षों का इतिहास इस बात का प्रमाण है। प्रतापसिंह वीरमदेव से उत्पन्न इस मेडतिया राठोड घराने ने पीढी दर पीढी मेवाड की पूरी स्वामीभक्ति और सम्पूर्ण वीरता और बलिदान के साथ सेवा करते आये और कुम्भलगढ की रक्षा का दायित्व उनके वश के नाम के साथ ही जुड गया।[1]

ऐसा माना जाता है कि ठाकुर प्रतापसिंह वि स 1624 (1568 ई) मे मुगल बादशाह अकबर द्वारा चित्तौडगढ पर आक्रमण के समय चित्तौड की रक्षार्थ लडते हुए मारे गये थे। चित्तौड आक्रमण पर बादशाह अकबर की विशाल सेना को देखकर जब महाराणा उदयसिंह सरदारो की सलाह से राजपरिवार एव कुछ सरदारो के साथ चित्तौडगढ छोडकर उदयपुर की ओर पहाडो मे चले गये उस समय बदनोर के ठाकुर एव मेडता के भूतपूर्व शासक वीरवर राठोड जयमल के साथ मेवाड के कई सरदार रावत साईदास, रावत पत्ता आदि चित्तौडगढ की रक्षार्थ अतिम युद्ध के लिये ठहर गये थे, जिसमे यह तय था कि चित्तौडगढ मे बचे हुए सरदार अतिम दम तक गढ की रक्षा करेंगे और रक्षा करते हुए अपना जीवन युद्ध की बलिवेदी पर अर्पित कर देंगे। चाणोद के ठाकुर राठोड प्रतापसिंह वीरमदेवोत भी अपने लगभग 500 सैनिको के साथ चित्तौड की रक्षार्थ इस युद्ध मे काम आये। उनका परिवार और पुत्र आदि महाराणा उदयसिंह के साथ पहाडो मे चले गये थे। जिस समय महाराणा उदयसिंह ने चित्तौड छोडने का निर्णय किया था उस समय यह आधार तय किया गया था कि आने वाले समय के लिए मेवाड की रक्षा हेतु पर्याप्त अनुभवी

१ प्रतापसिंह के पुत्र गोपालसिंह ने घाणेराव को अपना निवास स्थल एव जागीर की राजधानी बनाया, जिससे जागीर का नाम घाणेराव हो गया। घाणेराव के ठाकुर जब कभी यहा तक कि घाणेराव के जोधपुर राज्य के अन्तर्गत चले जाने के बाद भी, मेवाड के राजदरबार मे हाजिर होते, उनके आगमन के स्वागत पर चोबदार द्वारा सदैव 'कुम्भलभेर की खबर राखजो" की आवाज की जाती थी।

सामत तथा सामत परिवारो की अधिकाश नई पीढी को सुरक्षित रखा जाय और चित्तौडगढ म बचे हुए लोग अपने प्राणो की बलि देंगे। इससे ठाकुर प्रतापसिंह तो चित्तौड की रक्षा करते हुए अपने 400 सैनिको के साथ मारे गये और उनके पुत्र गोपालसिंह (गोपालदास) और हरिदास आदि महाराणा के साथ चले गये।[1]

1 ठाकुर प्रतापसिंह के छः पुत्र हुए गोपालदास, नरहरदास, कल्याणसिंह, भगवानदास, हरिदास और जगतसिंह। ठाकुर हरिदास के वशजो के अधिकार मे मालवे मे चिराला और मकरावल के ठिकाने रहे।

ठाकुर गोपालदास (गोपालसिंह)

ठाकुर प्रतापसिंह के निधन के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र गोपालदास वि स 1624 (1568 ई) मे चाणोद जागीर के स्वामी हुए।

गोपालदास की जन्म तिथि के सबध मे कोई जानकारी उपलब्ध नही है और न उनके ननिहाल के पक्ष मे कोई सूचना उपलब्ध हुई है। इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उनका बाल्यकाल और युवावस्था का अधिकाश समय चित्तौड़ और मेवाड मे गुजरा। यह भी सभव है कि महाराणा उदयसिह के राज्यकाल मे जो प्रमुख घटनाएं हुई, उनमे उन्होने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप मे भाग लिया हो।

जब मार्गशीर्ष वदि, 6 वि स 1624 (23 अक्टूबर, 1567 ई) के दिन मुगल बादशाह अकबर ने चित्तौडगढ का सैनिक घेराव प्रारम्भिक किया, उसके कुछ दिन पूर्व अथवा कुछ दिन बाद में मेवाड के प्रमुख सरदारो की सलाह से महाराणा उदयसिह राजपरिवार, सामतवर्ग एव उनके परिवार तथा सेना के एक भाग के साथ चित्तौड से निकल कर पश्चिमी घने पर्वतीय प्रदेश मे होते हुए राजपीपला की ओर चले गये, उस समय प्रतापसिह वीरमदेवोत तो चित्तौडगढ की रक्षार्थ आत्मोत्सर्ग करने के लिये ठहर गये और उनके ज्येष्ठ पुत्र गोपालदास अपने सहोदर हरिदास एवं परिजनो सहित महाराणा उदयसिह के साथ पहाडोंमे चले गये। इसके कुछ समय पश्चात् जब महाराणा उदयसिह लौट कर उदयपुर रहने लगे तो ठाकुर गोपालदास भी उनके साथ लौट आये।

चित्तौड हाथ से निकल जाने, मेवाड का चारो ओर से मुगल इलाके से घिर जाने तथा मेवाड का मैदानी भाग मुगल अधिपत्य मे चले जाने के कारण महाराणा उदयसिह कुम्भलगढ को मेवाड का प्रधान केन्द्र बनाकर पहाडो मे अपनी सैनिक,

प्रशासनिक एवं आर्थिक शक्ति सुदृढ़ करने में लगे। ठाकुर गोपालदास भी कुम्भलगढ़, मेवाड़ में मारवाड़ की ओर से प्रवेश के प्रधान मार्ग देसूरी का घाटा अथवा देसूरी की नाल तथा मारवाड़ एवं अरावली के बीच में स्थित मेवाड़ के गोडवाड़ परगने जिसमें कि उनकी जागीर चाणोद स्थित थी आदि की सैनिक सुरक्षा एवं प्रशासनिक सुव्यवस्था में हाथ बटाने लगे। इसके पश्चात चित्तौड़ पतन के चार वर्ष बाद 28 फरवरी, 1572 को महाराणा उदयसिंह का गोगुन्दा में देहान्त हो गया।

उसी दिन उनके ज्येष्ठ पुत्र प्रतापसिंह मेवाड़ के महाराणा बने। मुगल बादशाह अकबर की नीति और उद्देश्यों को देखते हुए यह निश्चित लगता था कि देर-सवेर वह अपने साम्राज्य के बीच स्थित मेवाड़ के स्वतन्त्र राज्य की विजय के लिये सैनिक अभियान शुरू करेगा। मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह और सामन्त वर्ग का चित्तौड़ त्यागने का मुख्य उद्देश्य पहाड़ों में दीर्घकालीन रक्षात्मक युद्ध करते हुए मेवाड़ की स्वतन्त्रता को कायम रखना था। महाराणा प्रताप और उनके सामन्तवर्ग ने उक्त निर्णय पर दृढ़ रहते हुए मेवाड़ राज्य के पर्वतीय भाग कुम्भलगढ़ से लगाकर भोमट एवं छप्पन इलाकों तक के क्षेत्र में बून्दी ईडर सिरोही, डूंगरपुर बांसवाड़ा प्रतापगढ़ आदि मेवाड़ाधीन रहे राज्यों का सहयोग प्राप्त करके विशाल मुगल सैनिक शक्ति के साथ दीर्घकालीन सामरिक संघर्ष हेतु आवश्यक प्रशासनिक एवं आर्थिक सुधारों तथा नवीन प्रकार के सैनिक एवं गुप्तचर संगठन की व्यवस्था का कार्य जारी रखा। सुरक्षात्मक युद्ध के लिये पूरी सैनिक तैयारी हेतु मेवाड़ को अधिकाधिक शान्तिकाल और युद्ध को टालने की आवश्यकता थी।[1] महाराणा उदयसिंह की मृत्यु के बाद मेवाड़ में नये महाराणा का राज्याभिषेक होने पर बादशाह अकबर यह आशा करने लगा था कि मेवाड़ का शासकवर्ग अपनी नीति में परिवर्तन कर राजपूताने के अन्य राजपूत राज्यों की भांति मुगल आधीनता स्वीकार कर लेगा। उनके लिए वह महाराणा प्रताप के साथ अपने हिन्दू एवं राजपूत मनसबदारों द्वारा सन्धि-प्रयास करने लगा। महाराणा प्रताप ने इस स्थिति का लाभ उठाया। वे अकबर के राजदूतों से बराबर शान्तिपूर्ण बातचीत करते रहे

1 1527 ई० में खानवा युद्ध तथा उसके बाद मेवाड़ पर माडू और गुजरात के बादशाहों के आक्रमणों तथा गृह-युद्ध से हुई क्षति की सम्पूर्ण पूर्ति महाराणा उदयसिंह के राज्यकाल में नहीं हो पाई थी। उसके बाद 1567 ई० में पुनः अकबर के आक्रमण से मेवाड़ को भीषण धक्का लगा और इस बार तो चित्तौड़ सहित मेवाड़ का मैदानी हिस्सा भी हाथ से निकल जाने के कारण मेवाड़ राज्य के लिये भीषण आर्थिक कठिनाइयां पैदा हो गई थी।

और उसके द्वारा उन्होने लगभग चार वर्ष निकाल दिये। अन्तिम एव चौथी सधिवार्ता टोडरमल से दिसम्बर 1573 ई० मे हुई।[1] उसके बाद अकबर का धैर्य टूट गया। इस बीच उसको प्रताप की निरन्तर सैनिक तैयारियो की जानकारी भी मिल रही थी।

महाराणा प्रताप की सुरक्षात्मक सैनिक तैयारी तथा पहाडो से मुगल सेना के साथ छापामार युद्ध के लिये आवश्यक व्यवस्था मे ठाकुर गोपालदास ने कुम्भलगढ के निकट के पर्वतीय भाग, देसूरी की नाल तथा गोडवाड परगने मे कार्य किया। इसमे गोडवाड प्रदेश के उपजाऊ एव सम्पन्न इलाके से सेना के लिये आवश्यक खाद्य पदार्थ जुटाने एव सैनिक-प्रशासनिक व्यय के लिये धन-सग्रह करने के प्रबन्ध को उन्होने निरन्तर रूप से जारी रखा। उन्होने मारवाड के मुगल विरोधी राठोड तत्वो एव मेवाड के स्वातत्र्य सघर्ष के पक्षधरो से सम्पर्क रखना एव आवश्यक सहयोग प्राप्त करने के दायित्व का भी निर्वाह किया। निस्सदेह ही 1576 से लेकर 1613 ई० तक के लगभग 37 वर्षो के लम्बे मुगल-विरोधी सघर्ष मे कुम्भलगढ से गोगूदा तक पर्वतीय भूभाग सैनिक कार्यवाही का प्रधान स्थल रहा। मारवाड की ओर से देसूरी मार्ग म प्रवेश करने वाली मुगल सेना को सदैव भीषण विनाश मोल लेना पडा। इसलिये मुगल सेना के अधिकाश आक्रमण मोही-खमनोर मार्ग से हुए।[2] कुम्भलगढ के पर्वतीय भाग से ठाकुर गोपालदास तथा मेवाड के अन्य सरदार गोडवाड इलाके में मुगल थानो[3] पर निरन्तर छापामार आक्रमण करके मुगल सैनिको को मार भगाते

1 अकबर की ओर से प्रताप से वार्ता करने के लिये सितम्बर, 1572 ई० मे जलालखा कोरची अप्रैल, 1573 ई० मे आमेर के कुवर मानसिह, अक्टूबर 1573 ई० मे आमेर नरेश भगवन्तदास कछवाहा तथा दिसम्बर 1573 ई० मे टोडरमल मेवाड आये थे।

2 मेवाड के पर्वतीय भूभाग मे सेना के प्रवेश के प्रधान मार्ग थे--1- मोही से खमणोर होते हुए हल्दीघाटी के मार्ग से गोगूदा, उदयपुर अथवा कुम्भलगढ की ओर का मार्ग, 2- मावली की ओर से देवारी मार्ग द्वारा उदयपुर की ओर का मार्ग 3- गोडवाड परगने से देसूरी की नाल से कुम्भलगढ गोगूदा, उदयपुर की ओर का मार्ग 4-सलूम्बर, सराडा की ओर से केवडे की नाल का उदयपुर की ओर का मार्ग 5-डूगरपुर की ओर से ऋषभदेव टीडी का उदयपुर की ओर का मार्ग।

3 गोडवाड मे मुगल सेना का प्रधान केन्द्र नाडोल रहा।

थे, इससे गोड़वाड़ मे मुगल अधिकार निरन्तर अस्थिर बना रहा और मेवाड़ की सेना के लिये आवश्यक धन, भोजन एवं अन्य साधन प्राप्त होता रहा। ठाकुर गोपालदास ने युद्ध के दौरान इस इलाके मे जो वीरतापूर्ण एवं साहसिक कार्य किये, उसके कारण 1613 ई० मे मुगलो से सन्धि होने के बाद जब मेवाड मे जागीरो का पुनर्वितरण किया गया, उस समय ठाकुर गोपालदास को नाडोल (गोडवाड) की जागीर दी गई।

18 जून, 1576 को हल्दीघाटी का प्रसिद्ध हुआ, जिसमे कछवाहा मानसिंह के सेनापतित्व मे मेवाड पर आक्रमण हेतु भेजी गई मुगल सेना का महाराणा प्रताप के नेतृत्व मे मेवाड की सेना का मुकाबला हुआ। प्रताप द्वारा बनाई गई मुगल विरोधी दीर्घकालीन समर योजना का यह प्रथम युद्ध था। मेवाड की अधिकांश सेना अपना जौहर दिखाकर तथा मुगल सेना एवं उसके सैनिक साधनो का विनाश कर वापस पहाडो मे लौट गई और पहाडों की नाकेबन्दी कर दी। भारी विनाश का सामना करते हुए मानसिंह मुगल सेना के साथ गोगूदा पहुँचे, जहां चारों ओर से उनको घेर लिया गया। प्रताप की घेरेबन्दी को बडी सफलता मिली और मानसिंह एवं मुगल सेना को भूख, बिमारी तथा जन धन मे भारी विनाश का सामना करते हुए मेवाड से भागना पडा। मुगल सेना की इस पराजय और बरबादी से उसकी बडी बदनामी हुई और अकबर को बडा धक्का लगा। उसने नाराज होकर कुछ दिनो के लिये मानसिंह एवं अन्य मुगल अधिकारियो की ड्योढी बन्द कर दी। हल्दीघाटी के युद्ध मे रामसाह तंवर एवं उसके तीनो पुत्रों, हकीमखां सूर, झाला बीदा, झाला मान, रावत नेतसी राठोड रामदास, डोडिया भीमसिंह, राठोड शंकरदास जैसे शूरवीरो के मारे जाने से मेवाड को भारी क्षति हुई। इस युद्ध मे ठाकुर गोपालसिंह ने अपने सैनिको के साथ भाग लिया। गोपालसिंह के शरीर पर 27 घाव लगे।

मेवाड के पर्वतीय भाग में मुगल सेना की पराजय से अकबर की सेना की अपराजेयता की तसवीर टूट गई और सर्वत्र मुगल विरोधी तत्वो एवं शक्तियो में प्रसन्नता एवं उत्साह की लहर फैल गई। इससे अकबर बहुत चिन्तित हुआ। हल्दीघाटी युद्ध के चार महिने बाद ही अक्टूबर में अकबर ने स्वयं मेवाड पर चढाई की, किन्तु प्रताप पहाडों के घने भागो मे चले गये और वहीं से मुगल सेना का विनाश करने लगे। अकबर को असफल होकर लौटना पडा। वि स 1635 (1578 ई) मे अकबर ने शाहबाजखां की बडी सेना के साथ सीधे कुम्भलगढ पर आक्रमण करने भेजा, जहां से युद्ध करते हुए प्रताप निकल कर छप्पन की ओर चले गये। कुम्भलगढ के

युद्ध मे ठाकुर गोपालदास ने बडी वीरता प्रदर्शित की । उनके इस युद्ध मे 21 घाव लगे । उसी वर्ष शाहबाजखा दूसरी बार मेवाड भेजा गया । किन्तु सफलता नही मिली और अकबर उस पर बहुत नाराज हुआ । मुगल सेना को मेवाड के पर्वतीय भाग मे सफलता प्राप्त नही मिली और अत मे महाराणा प्रताप को उनकी युद्ध योजना का सुफल मिला, जबकि 1586 ई. के बाद महाराणा ने चित्तौडगढ माडलगढ आदि स्थानो को छोडकर मेवाड का मैदानी हिस्सा भी पुन जीत लिया । इसके लगभग दस वर्ष बाद जनवरी, 1597 ई. मे महाराणा का स्वर्गवास हो गया । उनके ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह मेवाड के महाराणा हुए ।

अमरसिंह के महाराणा बनने के तुरन्त बाद 1600 ई० मे अकबर ने शाहजादे सलीम को मेवाड विजय के लिये भेजा । मैदानी भाग मे मुगल थाने वापस कायम करने के सिवाय यह आक्रमण भी अन्त मे निष्फल गया । 1605 ई. मे बादशाह अकबर का देहान्त हो गया और शाहजादा सलीम जहागीर के नाम से मुगल बादशाह बना । गद्दी पर बैठते ही उसने अपने शाहजादे परवेज की अध्यक्षता मे मेवाड पर बडी सेना भेजी ।[1] उस समय महाराणा ने देसूरी, बदनोर, माडलगढ माडल और चित्तौड की तलहटी की शाही सेना पर आक्रमण कर मुगल सैनिको को मार भगाया । देवारी के बाहर लडाई हुई उसमे मुगल सेना को पराजित होकर लौटना पडा । 1608 ई० मे बादशाह की आज्ञा से महाबतखा ने मुगल सेना लेकर मेवाड पर चढाई की, किन्तु वह भी पराजित होकर लौटा । वि० स० 1666 (1609 ई०) मे अब्दुल्लाखा को ससैन्य मेवाड पर भेजा गया ।

उन्ही दिनो अहमदाबाद से कटो पर शाही खजाना आगरे की ओर जा रहा था, जिसकी खबर पाते ही कुवर कर्णसिंह ने अपने सैनिको को लेकर उसका पीछा किया । उस समय मारवाड मे मालगढ और भाद्राजून के पास नाडोल के मुगल थानेदार गोइन्ददास के सैनिको के साथ उनका युद्ध हुआ । उसी समय अब्दुल्लाखा अपनी सेना लेकर गोडवाड पहुच गया । राणकपुर की घाटी के पास युद्ध हुआ, जिसमे मुगल सेना पराजित हुई । मेवाड के कई वीर सरदार इस

1 तुजुके जहागीरी मे लिखा है—"मेरी गद्दीनशीनी के समय सब अमीर अपनी अपनी सेना सहित दरबार मे मौजूद थे। मैंने सोचा कि इस सेना को शाहजादा परवेज की अध्यक्षता मे राणा पर भेजू, जो हिन्दुस्तान के दुष्टो और कट्टर काफिरो मे से है । मेरे पिता के समय मे भी कई बार उस पर सेनाएं भेजी गई, किन्तु उसने हार नही खाई थी ।

युद्ध मे खेत रहे। इस युद्ध मे गोडवाड के परगने में किये गये तमाम सैनिक अभियानो मे तथा 1605 ई० मे देसूरी के थाने पर अधिकार करने और मुगल खजाने का पीछा करने के अभियान मे ठाकुर गोपालदास एव उनके पुत्रो ने भाग लिया एव वीरता दिखाई। गोपालदास के ज्येष्ठ पुत्र किशनदास का नाम इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है।[1] गोडवाड के क्षेत्र मे अब्दुल्लाखा की पराजय से वर्षो बाद गोडवाड परगने पर फिर मेवाड का झण्डा फहराने लगा।[2]

वि० स० 1670, (1613 ई०) का वर्ष मेवाड के इतिहास का निर्णायक वर्ष साबित हुआ। मेवाड राज्य चित्तौड के युद्ध (1668 ई) से लेकर 45 वर्षो तक मुगल आधिपत्य के विरुद्ध अपनी स्वतन्त्रता के लिये अटूट रूप से लडता रहा और हर प्रकार की कुर्बानी देता रहा। किन्तु अकबर के पचास वर्षो के शासनकाल मे मुगल बादशाहत भारत मे पूरी तरह जम गई थी और भारत के अधिकाश भूभाग मे फैल गई थी। मुगल शासन सभी दृष्टियों से अधिकाधिक दृढ और बलशाली होता गया। इधर 1613 ई० मे जब शाहजादा खुर्रम के सेनापतित्व मे मुगल सेना ने पहली बार घने पहाडी इलाके छप्पन मे प्रविष्ठ होकर चावड पर कब्जा कर लिया तो पीढी दर पीढी निरन्तर रूप से कुर्बानी देने वाले एव न्यून होते जा रहे मेवाड के सामन्ती सैनिक वर्ग के सन्मुख समूल विनाश की हालत पैदा हो गई। अब तो स्वरक्षा के लिये भूमि भी नही रही। ऐसी स्थिति मे सम्मान-जनक सन्धि कर लेना श्रेयस्कर समझा गया।

शाहजादे खुर्रम के आक्रमण का मुकाबला करने के लिये अलग अलग इलाको मे सरदार नियत किये गये, जिनमे कुवर किशनदास गोपालदासोत भी थे। सारे पहाडी भूभाग मे शाही सेना ने झाडोल, ओगणा, ओजणा, गोगूदा, कुम्भलगढ, बडूजा, चावड, जावर, केवडा, पानडवा, मादडी आदि स्थानो पर मुगल थाने बिठा दिये गये। इन सभी स्थानो पर मेवाड के सरदारो ने हमले

---

1 वीर विनोद, पृ० 226

2 कर्नल टाड ने लिखा है कि जब 1587 ई० मे जोधपुर के मोटाराजा उदयसिह ने अपनी पुत्री मानीबाई (जोधबाई) का विवाह शाहजादा सलीम के साथ कर दिया तो उसके बाद गोडवाड, बदनोर, उज्जैन, और दीपलपुर के चार प्रदेश अकबर द्वारा मोटाराजा को जागीर मे दिये गये। गोडवाड 9,00,000 रु० की आय तथा बदनोर 2,50,000 रु० की आय के परगने थे। (टाड, भाग 1, पृ० 267)

युद्ध मे ठाकुर गोपालदास ने बडी वीरता प्रदर्शित की। उनके इस युद्ध मे 21 घाव लगे। उसी वर्ष शाहबाजखा दूसरी बार मेवाड भेजा गया। किन्तु सफलता नहीं मिली और अकबर उस पर बहुत नाराज हुआ। मुगल सेना को मेवाड के पर्वतीय भाग मे सफलता प्राप्त नही मिली और अंत मे महाराणा प्रताप को उनकी युद्ध योजना का सुफल मिला, जबकि 1586 ई. के बाद महाराणा ने चित्तौडगढ माडलगढ आदि स्थानो को छोडकर मेवाड का मैदानी हिस्सा भी पुन जीत लिया। इसके लगभग दस वर्ष बाद जनवरी, 1597 ई मे महाराणा का स्वर्गवास हो गया। उनके ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह मेवाड के महाराणा हुए।

अमरसिंह के महाराणा बनने के तुरन्त बाद 1600 ई० मे अकबर ने शाहजादे सलीम को मेवाड विजय के लिये भेजा। मैदानी भाग मे मुगल थाने वापस कायम करने के सिवाय यह आक्रमण भी अन्त मे निष्फल गया। 1605 ई मे बादशाह अकबर का देहान्त हो गया और शाहजादा सलीम जहांगीर के नाम से मुगल बादशाह बना। गद्दी पर बैठते ही उसने अपने शाहजादे परवेज की अध्यक्षता में मेवाड पर बडी सेना भेजी।[1] उस समय महाराणा ने देसूरी, बदनोर, माडलगढ माडल और चित्तौड की तलहटी की शाही सेना पर आक्रमण कर मुगल सैनिको को मार भगाया। देबारी के बाहर लडाई हुई उसमे मुगल सेना को पराजित होकर लौटना पडा। 1608 ई० मे बादशाह की आज्ञा से महाबतखा ने मुगल सेना लेकर मेवाड पर चढाई की, किन्तु वह भी पराजित होकर लौटा। वि० स० 1666 (1609 ई०) मे अब्दुल्लाखा को ससैन्य मेवाड पर भेजा गया।

उन्हीं दिनो अहमदाबाद से ऊटो पर शाही खजाना आगरे की ओर जा रहा था, जिसकी खबर पाते ही कुवर कर्णसिंह ने अपने सैनिको को लेकर उसका पीछा किया। उस समय मारवाड मे मालगढ और भाद्राजून क पास नाडोल के मुगल थानेदार गोइन्ददास के सैनिको के साथ उनका युद्ध हुआ। उसी समय अब्दुल्लाखा अपनी सेना लेकर गोडवाड पहुच गया। राणकपुर की घाटी के पास युद्ध हुआ, जिसमे मुगल सेना पराजित हुई। मेवाड के कई वीर सरदार इस

1 तुजुके जहांगीरी मे लिखा है—'मेरी गद्दीनशीनी के समय सब अमीर अपन अपनी सेना सहित दरबार मे मौजूद थे। मैंने सोचा कि इस सेना को शाहजाद परवेज की अध्यक्षता में राणा पर भेजू, जो हिन्दुस्तान के दुष्टो और कटट काफिरो मे से है। मेरे पिता के समय मे भी कई बार उस पर सेनाएं भेज गई, किन्तु उसने हार नही खाई थी।

युद्ध मे खेत रहे। इस युद्ध मे गोडवाड के परगने मे किये गये तमाम सैनिक अभियानो मे तथा 1605 ई० मे देसूरी के थाने पर अधिकार करने और मुगल खजाने का पीछा करने के अभियान मे ठाकुर गोपालदास एव उनके पुत्रों ने भाग लिया एव वीरता दिखाई। गोपालदास के ज्येष्ठ पुत्र किशनदास का नाम इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है।[1] गोडवाड के क्षेत्र मे अब्दुल्लाखा की पराजय से वर्षो बाद गोडवाड परगने पर फिर मेवाड का झण्डा फहराने लगा।[2]

वि० स० 1670, (1613 ई०) का वर्ष मेवाड के इतिहास का निर्णायक वर्ष साबित हुआ। मेवाड राज्य चित्तौड के युद्ध (1668 ई) से लेकर 45 वर्षो तक मुगल आधिपत्य के विरुद्ध अपनी स्वतन्त्रता के लिये अटूट रूप से लडता रहा और हर प्रकार की कुर्बानी देता रहा। किन्तु अकबर के पचास वर्षो के शासनकाल मे मुगल बादशाहत भारत मे पूरी तरह जम गई थी और भारत के अधिकाश भूभाग मे फैल गई थी। मुगल शासन सभी दृष्टियो से अधिकाधिक दृढ और बलशाली होता गया। इधर 1613 ई० मे जब शाहजादा खुर्रम के सेनापतित्व में मुगल सेना ने पहली बार घने पहाडी इलाके छप्पन मे प्रविष्ठ होकर चावड पर कब्जा कर लिया तो पीढी दर पीढी निरन्तर रूप से कुर्बानी देते वाले एम न्यून होते जा रहे मेवाड के सामन्ती सैनिक वर्ग के सन्मुख समूल विनाश की हालत पैदा हो गई। अब तो स्वरक्षा के लिये भूमि भी नही रही। ऐसी स्थिति मे सम्मान-जनक सन्धि कर लेना श्रेयस्कर समझा गया।

शाहजादे खुर्रम के आक्रमण का मुकाबला करने के लिये अलग अलग इलाको मे सरदार नियत किये गये, जिनमे कु वर किशनदास गोपालदासोत भी थे। सारे पहाडी भूभाग मे शाही सेना ने भाडोल, ओगणा, आजणा, गोगू दा, कुम्भलगढ, कडू जा, चावड, जावर, बेगडा, पानडवा, मादडी आदि स्थानो पर मुगल थाने बिठा दिये गये। इन सभी स्थानो पर मेवाड के सरदारो ने हमले

---

1 वीर विनोद, पृ० 226

2 कर्नल टाड ने लिखा है कि जब 1587 ई० मे जोधपुर के मोटाराजा उदयसिंह ने अपनी पुत्री मानीबाई (जोधबाई) का विवाह शाहजादा सलीम के साथ कर दिया तो उसके बाद गोडवाड, बदनोर, उज्जैन, और दीपलपुर के चार प्रदेश अकबर द्वारा मोटाराजा को जागीर मे दिये गये। गोडवाड 9,00,000 रु० की आय तथा बदनोर 2,50,000 रु० की आय के परगने थे। (टाड, भाग I, पृ० 267)

किये। महाराणा का यह आदेश भी था कि जो सरदार जिस स्थान पर अधिकार कर लेगा उस पर उसका स्थायी अधिकार माना जावेगा। इस पर ठाकुर गोपालदास के ज्येष्ठ कुंवर कृष्णदास ने अपने सैनिकों के साथ बड़ूआ के शाही थाने के मुगल अधिकारी दिलावरखाँ को पराजित कर अपना अधिकार कर लिया। किंतु पास ही कुम्भलगढ़ थाने से सहायता प्राप्त कर दिलावरखाँ ने पुनः बड़ूआ (कणूबा) पर कब्जा कर लिया। अन्य स्थानों पर भी अत्यन्त अल्प संख्या वाली मेवाड़ी सेना को स्थायी सफलता नहीं मिली। इस बार पहाड़ी भाग सहित समूचे मेवाड़ पर मुगल सेना ने कब्जा कर लिया।

सभी प्रकार से असुरक्षित पाकर मेवाड़ के सरदारों की सलाह से महाराणा अमरसिंह ने फरवरी, 1615 ई० में मुगल बादशाह से सन्धि कर ली जिसमें मेवाड़ के महाराणा को शाही दरबार में उपस्थित होकर सेवा देने से मुक्त रखा गया। जहांगीर को इससे अपार हर्ष हुआ, चूंकि जो सफलता उसके प्रतापी पिता अकबर को नहीं मिली, उसका श्रेय उसको मिला।

सन्धि हो जाने से मुगल सेना ने सारा मेवाड़ खाली कर दिया और मुगलों द्वारा जीते हुए चित्तौड़गढ़ सहित मेवाड़ के सारे इलाके लौटा दिये गये। सर्वत्र शांति हो गई और महाराणा अमरसिंह द्वारा सारे राज्य की पुनर्व्यवस्था और सुधार का कार्य शुरू किया गया। महाराणा ने युद्ध के समय अर्पित की गई सरदारों की वीरता तथा बलिदान से पूर्ण सेवाओं को ध्यान में रखते हुए उनकी जागीरों में वृद्धि की गई और उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई गई। घाणेराव (जो युद्ध के दौरान कई अर्से तक मुगलों के अधीन रहा) के ठाकुर गोपालदास एवं ज्येष्ठ पुत्र कृष्णदास तथा अन्य पुत्रों द्वारा की गई वीरतापूर्ण सेवाओं के कारण राज्य दरबार में उनकी प्रतिष्ठा में बढ़ोतरी की गई। महाराणा के राज्य दरबार में मेवाड़ के प्रथम वर्ग के सामंतों में उनको स्थान दिया गया और उनको दरबार में सलूम्बर के बाद पांचवी बैठक दी गई।[1] उसी समय वीरवर जयमल के पौत्र सावलदास को दरबार में 14 वीं बैठक दी गई। प्रतिष्ठा के अनुसार ठाकुर गोपालदास को समस्त राज्यचिह्न (तवाजिमा) छत्र, छड़ी, घोटा, नक्कारा, निशान, कौनल आदि रखने की आज्ञा दी गई।

---

1 मेवाड़ राज्य-दरबार में मेवाड़ के चार प्रधान ठिकानों बड़ी सादड़ी, बेदला, कोठारिया और सलूम्बर के सरदारों के बाद पांचवी बैठक प्राप्त करना बहुत बड़ी प्रतिष्ठा की बात थी। इससे ठाकुर गोपालदास एवं उनके परिजनों के वीरतापूर्ण कार्यों के स्वरूप का अनुमान लगाया जा सकता है। मेवाड़ की तवा-

उसी प्रकार ठाकुर गोपालदास की जागीर में भी अभिवृद्धि की गई। प्राचीन पत्रों में यह उल्लेख मिलता है कि चैत्र सुदि 10, 1662 विक्रमी (9 मार्च, 1606 ई) रविवार को महाराणा अमरसिंह ने ठाकुर गोपालसिंह को बदनोर और मसुदा का पट्टा (जो पहिले राव जयमल की जागीर में था)[1] तथा गोड़वाड़ में नाडोल का पट्टा प्रदान किया।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, इस मेड़तिया राठौड़, वंश शाखा के जन्मदाता ठाकुर प्रतापसिंह को घाणेराव जागीर दी गई थी, जो ग्राम गोड़वाड़ परगने में नाडोल से पश्चिम में है। महाराणा उदयसिंह के काल में घाणेराव गोड़वाड़ परगने में प्रधान

रीख 'वीर विनोद' में इस परिवार के वीर कार्यों के संबंध में अधिक उल्लेख नहीं है, इसका कारण यह हो सकता है कि उक्त इतिहास के लिखने के समय घाणेराव ठिकाना मारवाड़ राज्य के अन्तर्गत था और श्यामलदास को ठिकाने से पर्याप्त सामग्री नहीं उपलब्ध हो सकी हो। दूसरी ओर मारवाड़ राज्य का अंग बन जाने के बाद भी घाणेराव ठिकाने की स्थिति वहां 'परायेपन' की ही रही और घाणेराव के ठाकुर कभी भी मारवाड़ राज्य में स्वयं को भावनात्मक तौर पर नहीं जोड़ पाये। वे सदा मेवाड़ के राजघराने से संबंधित रहने के लिये लालायित रहे।

घाणेराव ठिकाने में वि स 1662 के प्राचीन पट्टे में यह उल्लेख है -'महाराजाधिराज महाराणा श्री अमरसिंहजी आदेसात्—राठोड गोपालदास कस्य ग्राम मया कीधो—परगनो बदणोर री मसुदा सुधो जीतरा ग्राम सु जैमलजी हैथो जीतरा गामासु स 1662 वर्षे चैत्र सुदी 10 रवि उद ॥श्री मुख ॥

बदनोर राठौड़ राव जयमल को पट्टे में दिया गया था। किन्तु 1568 ई में चित्तौड़ पतन तथा जयमल के मारे जाने के बाद बदनोर लम्बे समय तक मुगलों के अधीन चलता रहा। इधर युद्ध के दौरान महाराणा अमरसिंह ने राव जयमल के पौत्र मनमनदास को देलवाड़ा की जागीर प्रदान की थी। इस कारण सम्भव है उस समय महाराणा ने बदनोर, जो उस समय भी मुगलाधीन था, का पट्टा ठाकुर गोपालदास के नाम कर दिया हो ताकि वे उस पर अधिकार करने के लिये अपनी शक्ति लगा सकें। बाद में बदनोर जागीर जयमल के वंशजों के पास ही रही और नाडोल अर्थात् घाणेराव की जागीर गोपालदास के वंशजों के पास रही।

जागीर थी और गोडवाड की रक्षा और व्यवस्था का दायित्व इस पट्टे के स्वामी को मिला हुआ था। मुगलो के साथ निरंतर युद्ध के कारण गोडवाड की सुरक्षा के साथ कुम्भलगढ और उसके पास मेवाड़ के पर्वतीय मार्ग देसूरी की नाल की रक्षा का महत्व बढ गया। युद्ध काल म मुगलो ने भी गोडवाड मे नाडोल को अपना प्रमुख सैनिक केन्द्र रखा था। इसलिये 1605 ई मे, जबकि घाणोद सहित गोडवाड पर गना मुगलो के अधीन था, महाराणा अमरसिंह की ओर से जब ठाकुर गोपालदास, उनके पुत्रो तथा अन्य राजपूत सरदारो ने मिलकर देसूरी के मुगल थाने पर कब्जा कर लिया और नाडोल सहित उसके आसपास के इलाके से मुगल सैनिकों को मार भगाया तो महाराणा अमरसिंह ने ठाकुर गोपालदास के वीरतापूर्ण कार्य से प्रसन्न होकर उनको गोडवाड मे घाणोद की जगह नाडोल का पट्टा दिया, जिसके द्वारा गोडवाड के साथ कुम्भलगढ की रखवाली का सीधा दायित्व भी उन पर आ गया और उसके साथ ही 'कुम्भलगढ की खबर रखना' सम्बोधन इस परिवार के नाम के साथ जुड गया।

महाराणा की ओर से नाडोल का पट्टा मिलने पर ठाकुर गोपालदास वहा पर अधिकार करने के लिये रवाना हुए। मार्ग मे घाणेराव गाव, जो देसूरी से 2 मील दूर नाडोल की ओर बढने पर मार्ग मे पडता है, के समीप बावडी पर वे वृक्ष की छाया में विश्राम के लिए ठहरे। इतने मे शोर हुआ कि मेवाड से घाणेराव आने वाली ब्राह्मणो की बारात को डाकुओ ने लूट कर बीद को मार दिया है। यह सुनकर ठाकुर गोपालदास ने अपने आदमियो को साथ लेकर गाव वालो के साथ डाकुओ का पीछा किया और डाकुओ पर आक्रमण कर उनको मौत के घाट उतार दिया। इसमे ठाकुर गोपालदास के भी चार आदमी काम आए।

घाणेराव और नाडोल का भूमि भाग अरावली के पर्वतीय भाग से सटा हुआ है। उस समय इस इलाके में राहजनी, डकैती और लूटखसोट का अत्यन्त बोलबाला था और ग्रामवासियो मे सदा डाकूओ का भय बना रहता था। जब ग्रामवासियो[1] को ठाकुर गोपालदास का परिचय मिला तथा उनको नाडोल की जागीर मिलने का हाल मालूम हुआ तो गाव के ब्राह्मणो ने इनसे अर्ज की कि 'क्षत्रि

1 उस समय घाणेराव मे प्रधान रूप से गूजरगोड, राजगुर एव गू देचा ब्राह्मणों का निवास था–'गाव घाणेरो बामणा रो सासण हुतो एक वास गूजरगोडारो एक राजगुरांरो, एक वास गु दचारो जुमलै घाणेरै तीन वास हुआ' चाकीदास री ख्यात, पृ० 63।

सदैव ब्राह्मणो की रक्षा करते हैं। चूंकि हमे डाकू लोग बहुत सताते हैं, इस वास्ते आप यहा अपना थाना रखकर राजपूतों को नियत कर दें जो हम लोगो को डाकूओं से बचावें। उसके एवज मे हम माफीदारो में से, जिनके वंश नही होगा, उसकी जमीन का हासिल लेने का स्वत्व और स्वामित्व आपका होगा।" ठाकुर गोपालसिंह ने ब्राह्मणो की इस प्रार्थना को स्वीकार कर वि. सं. 1662, वैशाख विद 3 को इस आशय का इकरारनामा उनसे लिखवा कर अपना थाना घाणेराव में नियुक्त किया। इस बात को शुभ शकुन मानकर बाद मे वे स्वयं भी अधिकतर घाणेराव मे रहने लगे।

वि. सं. 1683, आषाढ वदि 6 (26 मार्च, 1627 ई.) को ठाकुर गोपालदास का वृद्धावस्था मे देहात हुआ। वे बड़े वीर पुरुष थे। उनका अधिकाश जीवनकाल लड़ाईयो मे ही बीता था। प्राचीन पत्रो के सुरक्षित नही रखे जाने तथा उस काल मे दैनिक राजकीय विवरण रखे जाने की कोई व्यवस्था नहीं होने से ठाकुर गोपालदास के वीरतापूर्ण कार्यों का विस्तृत विवरण उपलब्ध नही है। किन्तु उनको मेवाड राज्य दरबार में जो प्रतिष्ठा मिली एवं जागीर दी गई उससे युद्धकाल मे गोपालदास और उनके पुत्रो एवं परिजनों द्वारा की गई सेवाओ का पता चलता है।

इनके चार पुत्र नरहरिदास, किशनदास (कृष्णदास) शत्रुशाल और सबलसिंह हुए। ज्येष्ठ पुत्र नरहरिदास का देहान्त अपने पिता के जीवन काल मे ही हो गया था। अधिक संभव यह है कि वे मुगलो से लड़ते हुए किसी लड़ाई में मारे गये।



ठाकुर किशनदास

ठाकुर गोपालदास का देहान्त होने के बाद उनके दूसरे कुँवर किशनदास वि० स० 1683, आषाढ विद 6 (26 मार्च, 1627 ई०) को नाडोल जागीर के स्वामी हुए।[1] उनका बाल्यकाल पहाड़ो मे तथा भारी कठिनाइयों एव सकटो के बीच गुजरा। युवावस्था प्राप्त करते ही वे महाराणा प्रताप के मुगल विरोधी सघर्ष मे भाग लेने लगे। उन्होंने कई लडाइयो मे भाग लिया, मुख्यतः अपने अपने पिता के साथ गोडवाड परगने, कुम्भलगढ तथा गोगूदा के आसपास के पर्वतीय भूभाग मे हुई तमाम लडाईयो तथा छापो, धावो आदि मे उन्होने अपनी वीरता और शौर्य का प्रदर्शन किया। ऊपर लिखा जा चुका है कि युवराज कर्णसिह ने जब अहमदाबाद से आगरा जा रहे शाही खजाने का पीछा किया तो किशनदास उनके साथ थे तथा उसके बाद अब्दुल्लाखाँ से हुए राणपुर के युद्ध मे किशनदास ने भाग लिया। शाहजादा परवेज के मेवाड पर आक्रमण के समय जब महाराणा के सरदारो ने मुगल थानो पर हमले किये उस समय किशनदास ने पिता गोपालदास के साथ देसूरी पर अधिकार कर लिया था। शाहजादा खुर्रम के आक्रमण के समय कुँवर किशनदास ने कडूजा (कणूजा) पर अधिकार कर लिया था।

किशनदास ने जागीर के स्वामी बनने के बाद घाणेराव मे ही अपना निवास किया और नाडोल के बजाय घाणेराव को ही जागीर का स्थायी केन्द्र बनाया। उन्होने घाणेराव मे दुर्ग और महलो का निर्माण करवाया और घाणेराव

---

1 ठाकुर किशनदास (कृष्णदास) के जन्म तथा उनकी माता के सम्बन्ध मे कोई जानकारी उपलब्ध नही है।

म रह कर ही शासन करने लगे। इसलिये उनकी जागीर घाणेराव जागीर कहलाने लगी। किशनदास ने वि स 1625, श्रावण 1 (17 जुलाई, 1627 ई) को महल बनवाने प्रारम्भ किये।[1]

ठाकुर किशनदास न केवल वीर योद्धा थे, अपितु वे विद्या, कला, शिक्षा तथा कृषि एवं व्यापार आदि की उन्नति मे रुचि रखते थे। 1615 ई० मे मेवाड की मुगलो से सन्धि हो जाने के बाद मेवाड मे सर्वत्र शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित हो गई। महाराणा अमरसिंह शीघ्र ही 1620 ई० मे चल बसे। उनके बाद महाराणा कर्णसिंह और महाराणा जगतसिंह ने मेवाड की शासन व्यवस्था को सुधार कर कृषि, उद्योग और व्यापार की उन्नति के लिये प्रयास किये। मेवाड के शासक विद्या-प्रेमी थे। उनके दरबार मे विद्वानो, कलाकारो साहित्यिको आदि का बराबर पोषण होता रहा। घाणेराव ठाकुर किशनदास स्वय भी अपनी जागीर के इलाके मे जन-जन की सुरक्षा एव उसकी सभी प्रकार की तरक्की का प्रयास करने लगे।

मेवाड से मारवाड की ओर जाने वाले पहाडी मार्गों, मुख्यत देसूरी की नाल मे डाकूओ की लूट खसोट को समाप्त करने के लिये उन्होने नाल तथा अन्य मुख्य मुख्य स्थानो पर चोकिया कायम कर दी, जिससे प्रजाजनो को बहुत राहत मिली और वे अब निर्भय होकर अपनी कृषि, कारोबार एव व्यवसाय करने लगे। इससे कृषि, उद्योग एव व्यापार बढ़ने लगे और प्रजाजनो की आर्थिक उन्नति होने लगी। किशनदास ने घाणेराव कस्बे की तरक्की के लिये वहा व्यापारियो को आबाद किया और कस्बे मे प्रति सप्ताह हटवाडा लगवाया, जिसमे दूर दूर से लोग आकर क्रय विक्रय करते थे। उनकी इस नीति के कारण घाणेराव नये रूप म आबाद होकर न केवल एक बडा कस्बा हो गया, अपितु वह मेवाड एव मारवाड के बीच होने वाले व्यापार का केन्द्र भी बन गया।

अपने इलाके मे व्यापार की निरन्तर अभिवृद्धि एव सुव्यवस्था के लिये किशनदास ने व्यापारियो से नापा व चु गी लेने के निश्चित नियम स्थिर किये। किन्तु

---

1 बाकीदास की ख्यात में लिखा है– गुजरगोड, राजगुर, गु देचा– था तीन जात रा ब्रामणा रो गाव घाणीरो जठे किशनदास गोपालदासोत महल कराया। घाणेराव गाँव रो नाम परगट हुवो। किशनदास मेडतियो आय रहियो जदसू घाणेराव कहाणो।

घाणेराव की व्यापारिक उन्नति में एक और बाधा थी। मेवाड से मारवाड मे ज
माल आता था, उस पर मेवाड और मारवाड दोनो राज्यो की चुगी लगती थी
जिसमे व्यापारियों को बडी हानि और परेशानी होती थी। इसको समाप्त करा
के लिये किशनदास ने मेवाड के महाराणा जगतसिंह (16 7–1652 ई०) से
निवेदन कर वि० स० 1699, चैत्र वदि 6 (1 मार्च 1643 ई०) बुधवार क
उनसे एक परवाना जारी करवाया, जिसके द्वारा मेवाड, गोडवाड, घाणेराव
माडलगढ एव नीमच के दाणियो को आदेश दिया गया कि राठोड किशनदा
गोपालदासोत की वस्ती के महाजनो को सदा से दाण की छूट थी, उनसे आ
भी दाण वसूल नही की जाय।[1] महाराणा के इस आदेश से घाणेराव कस
एव इलाके को व्यावसायिक एव कला-कौशल की उन्नति की दृष्टि से बहुत ला
पहुँचा।

ठाकुर किशनदास के कार्यकाल मे घाणेराव कस्बा आर्थिक एव व्यावसायि
उन्नति के साथ साथ विद्या, कला और साहित्य-सृजन का भी केन्द्र हो गया
उन्होंने विद्वानो, साहित्यिको एव कलाकारो को सरक्षण एव प्रोत्साहन दिया
प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थो से इस बात के प्रमाण मिले हैं।[2] उस काल मे लि
गये ग्रन्थो की पुष्पिकाओ से पता चलता है कि वि० स० 1696 से 170
(1639 से 1647 ई०) के दौरान कर्मसिंह भट्टारक, बीठल जोशी, बाणारस
तिलकचन्द आदि ने ठाकुर किशनदास की आज्ञा से कई प्राचीन ग्रन्थो की प्रतिलिपि
तैयार की। बीठल जोशी ने माधोदास कृत रामरासो[3] और गजमोक्ष

1 'सर्व श्री उदेपुर सुथाने महाराजाधिराज महाराणा श्री जगतसीगजी आदेशा
दाणी मेवाड रा गोडवाड रा व घाणोर रा माडलगढ रा नीमच रा समस
दाणीया कस्य–१ अप्र० राठोड कीसनदास गोपालदासोत री वसती रा वाणीय
है सदा दाण छोडता हा सु हवे ही छोडज्यो स० १६९९ वर्षे चैत वद, ६ वुधे

2 राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के उदयपुर सग्रहालय मे ऐसी कई प्राची
पाडुलिपिया देखने को मिली हैं, जिनके द्वारा ठाकुर कृष्णदास के विद्व
एव कला प्रेमी होने के प्रमाण मिलते हैं।

3 ग्रन्थ की पुष्पिका– 'इति श्री माधोदास दधवाडिया चारण विरचितम सम्पूर्ण
महाराजाधिराज श्री श्री श्री जगतसघजी राज्य सवत् १६९७ वैशाख मा
शुक्ल पक्षे एकादश्याम् इतौ बुधवासरे लिख्यतम् महाराजा राज्य श्री श्री ९
किसणदासजी तत्पुत्र महाराजकुमार श्री नाराइणदासजी पठनार्थम् पुष्करण
जातीय जोशी बीठल लिख्यतम् वास्तव्यम् सुधीदती नग्रे (साद
घाणेराव) शुभतु ॥

चन्दवरदाई कृत विनय मगल, तथा शकुनावली, मानहुकुतुल, छीक विचार आदि ग्रन्थो की प्रतिया तैयार की। वाणारसी तिलकचन्द ने केशवदास रचित रसिक-प्रिया [1] एव जल्ह कवि रचित बुद्धिरासौ [2] एव नागमत तथा राठोड पृथ्वीराज कृत वेलि क्रिसन रुकमिणी री तथा सूरसागर की प्रतिया तैयार की। धर्मसिंह भट्टारक ने खेमसागर कृत पश्चिमाधीश स्तोत्र की प्रतिलिपि तैयार की। घाणेराव मे किशनदास के काल मे ही माधोदासकृत गुणरामरासौ, छीहल कृत पचसहेली रा दूहा ग्रन्थो की प्रतिया तैयार की गई।[3]

उस समय कई ग्रन्थ ठाकुर किशनदास के कु वर श्री नाऊ जी अथवा नारायण दास के पढने के लिये तैयार करवाये गये थे, इससे प्रकट होता है कि तत्कालीन राजपरिवार मे विद्या और साहित्य के अध्ययन का वातावरण विद्यमान था।

ठाकुर किशनदास के महाराणा श्री जगतसिंह से अत्यन्त मधुर सबध रहे। महाराणा जगतसिंह ने वि स 1687, आषाढ सुदि 4 (4 जून, 1630 ई)

---

1 पुष्पिका–'इति श्री रसिकप्रिया सम्पूर्ण समाप्तम् श्रीरस्तु। सवत् १७०४ वर्षे पौष वदि १४ सोमे महाराजाधिराज महाराजा श्री किशन-दासजी पुत्र कु वर श्री नाऊजी वचनार्थे वाणारिस तिलकचन्द लिखत घाणेरा मध्ये।'

2 पुष्पिका–'इति श्री अखापुत्ती सम्वादो श्री बुद्धिरासो सम्पूर्णम्। सवत् १७०४ वर्षे शाके १५६९ वर्तमाने पौष मासे शुक्ल पक्षे ३ तिथौ रविवारे श्री राठोड वशे मेडतिया महाराजाधिराज महाराज श्री किसनदासजी पुत्र कु वर श्री नारा-यण दासजी पटनार्थे। महाराजाधिराज महाराणा श्री श्री श्री श्री जगतसिंघ जी विजय राज्ये श्री चित्रावाल गच्छेवाणारिस तिलिकचन्द लिखित घाणेरा मध्ये।

3 'इति श्री कृष्ण रुकमिणी वेलि सम्पूर्णम् समाप्त" राठोड श्री प्रिथीराजजी कृत। सवत् १६९६ वर्षे माह वदि १४ शनौ ॥महाराजाधिराज महाराजा श्री श्री श्री श्री ... तस्यात्मज श्री श्री श्री श्री पठनार्थं वाणारिस श्री महेशजी प्रिय (शिष्य) लिखत। शुभस्थान घाणेरा मध्ये॥"

"इति श्री देवी जी रा छद सम्पूर्णम् राजि श्री गोपालदास जी सुत राजि श्री श्री श्री श्री ४ सवलसल जी पठनार्थ ॥लिखत वाणारिस तिलक॥ गढवी कला लिखा-वत ॥सवत् १६९८ वर्षे आसोज सुदि ९ शनौ॥"

गुरुवार को ठाकुर किशनदास को कड़ूजा (कणुजा) ग्राम प्रदान किया।[1] जैसा कि ऊपर कहा गया है महाराणा अमरसिंह के आदेशानुसार कवरपदे मे किशनदास ने अपनी वीरता से मगरे मे स्थित कड़ूजा गाव से मुगल थाना उठाकर उस पर कब्जा कर लिया था। मुगल-मेवाड संधि के बाद जब सारा मेवाड महाराणा के अधिकार मे आ गया तो महाराणा अमरसिंह के उक्त आदेशानुसार कड़ूजा गाव प्राप्त करने के किसनदास अधिकारी थे। किन्तु महाराणा अमरसिंह का जल्दी ही वि स 1676 (1620 ई) मे स्वर्गवास हो गया। उनके उत्तराधिकारी महाराणा कर्णसिंह का भी आठ वर्ष शासन करने के बाद वि स 1684 (1628ई) म देहान्त हो गया। उनके बाद महाराणा जगतसिंह का राज्याभिषेक हुआ। वे अपने पितामह के काल मे हुए युद्धो और उनमे मेवाड के सरदारो द्वारा किये गये वीरतापूर्ण कार्यों से भली भाति परिचित थे। अतएव उन्होने ठाकुर किशनदास को उक्त गाव जागीर मे प्रदान किया। इतना ही नही उक्त जागीर के साथ भी महाराणा जगतसिंह ने प्रसन्न होकर किशनदास को राजपुर, सीवास तथा डेहगली (डूगली) की वार्षिक पाच हजार रुपयो की जागीर भी प्रदान की।[2]

ठाकुर किशनदास ने 23 वर्ष तक घाणेराव मे शासन किया। वि स 1706 (1649 ई) मे वे परलोक सिधारे। किशनदास अत्यन्त वीर एव साहसी प्रकृति के पुरुष थे। अपने पिता ठाकुर गोपालदास के साथ मिलकर युद्ध काल म मेवाड के लिये जो वीरता और शौर्य के कार्य उन्होंने किये उससे उनके परिवार को मेवाड के राज्य दरबार मे उच्च प्रतिष्ठा मिली। किशनदास अच्छे एव बुद्धिमान प्रशासक और प्रजा हितैषी शासक थे। उनके काल मे घाणेराव जो पहिले एक अज्ञात पिछड़ा गाव था, एक उन्नत कस्बा एव व्यापार और व्यवसाय की मडी बन गया और उनकी जागीर के लोगो की आर्थिक तरक्की हुई। उन्होने अपने इलाके मे चोरी, डकैती

---

1 महाराजाधिराज महाराणा श्री जगतसीघजी आदेसातु राठोड कीसनदास कस्य रास मया कीधो धधारो १ ग्राम कडूजो मगरा माहे सवत १६९७ वर्षे आसाढ ६ सुदि २।

2 महाराजाधिराज महाराणा श्री जगतसिघजी आदेसातु राठोड कीसनदास कस्य ग्राम मया कीधो

२५०० राजपुर १५०० सीवास
१००० डेहगली
सवत १६९९ वर्षे असाड सुदी १३ सोमे॥

ादि समाप्त कर सम्पूर्ण शांति और व्यवस्था कायम की। इतना ही नहीं वे ज्ञानी ौर साहित्य एव कला के मर्मज्ञ थे। उन्होंने अपने इलाके मे विद्वानो, कलाकारो एव लेखको को सरक्षण दिया और स्वय ने रुचि लेकर साहित्य, दर्शन, धर्म, नीति आदि विषयो के ग्रन्थो की अध्ययनार्थ प्रतिलिपिया तैयार करवाई।

उनके तीन पुत्र थे, बाघसिह, दुर्जनसिह और नारायणदास[1] जिनमे प्रथम पुत्र का उनके जीवन काल मे ही देहान्त हो गया था।

---

1 प्राचीन ग्रन्थो मे उनके कु वर नाऊंजी अथवा नारायणदास के नाम का उल्लेख हुआ है, जिनके पढने के लिये ठाकुर किशनदास ने कई ग्रन्थो की प्रतिलिपिया कराई। बाद मे उनके पठनार्थ ठाकुर दुर्जनसिह के काल मे वि स 1729 मे नन्ददास कृत 'नाम मजरी' ग्रन्थ की प्रतिलिपि की गई। इससे जान पडता है कि वे ठाकुर किशनदास के दुर्जनसिह से छोटे तृतीय पुत्र थे।

ठाकुर दु...

ठाकुर किशनदास के देहान्त के बाद उनके द्वितीय पुत्र दुर्जनसिंह वि.स. 170 (1649 ई) मे घाणेराव के स्वामी हुए ।

ठाकुर किशनदास के देहान्त के तीन वर्ष बाद वि स. 1709 (1652 ई) महाराणा जगतसिंह का भी स्वर्गवास हो गया । उनके बाद महाराणा राजसिंह मेवाड अधिपति हुए । महाराणा राजसिंह की गद्दीनशीनी के तत्काल बाद ही मुगल बा शाह शाहजहा[1] से उनकी अनबन हो गई । महाराणा जगतसिंह ने चित्तौड किले मरम्मत प्रारम्भ की थी, जिसको महाराणा राजसिंह ने पूरा किया । यह समाच पाकर बादशाह बहुत नाराज हुआ । दक्षिण तथा कन्धार की लडाईयो मे भाग ले हेतु महाराणा द्वारा सेना नहीं भेजने से वह पहिले ही नाराज़ था । बादशाह चित्तौडगढ मे कराई मरम्मत गिरवा दी और अजमेर के निकटस्थ मेवाड राज्य पुर, माडल, खैराबाद, माडलगढ, जहाजपुर, सावर, फूलिया, बनेडा, हुरडा त बदनौर आदि परगनों को मुगल सीमा मे मिला दिया । महाराणा राजसिंह को ब बहुत खटका । उसी समय शाहजहा की वृद्धावस्था एव बिमारी के कारण उसके पु

---

1 बादशाह जहागीर ने 1605 से 1627 ई० तक राज्य किया । उसके बा उसका पुत्र खुर्रम शाहजहा के नाम से मुगल बादशाह हुआ जिसने 1658 ई तक राज्य किया । शाहजहाँ के चारो पुत्रो दाराशिकोह, शुजा, औरगजेब और मुराद मे उत्तराधिकार के लिये गृह-युद्ध हुआ । इसमे औरगजेब सफ हुआ । उसने बाप को कैद कर दिया, अपने भाईयो दारा और मुराद को मरव डाला और स्वय मुगल साम्राज्य का बादशाह बन गया । शुजा अराकान पहाडियो की ओर भाग गया ।

मे उत्तराधिकार के लिये गृह-युद्ध छिड गया। इस स्थिति का लाभ उठाकर महाराणा राजसिंह ने उक्त परगनो पर आक्रमण कर वहा पर पुन अधिकार कर लिया और आगे बढकर उन्होंने मालपुरा लूटा, जहा से अपार सम्पत्ति हाथ लगी। इसके बाद महाराणा ने टोंक, सांभर, लालसोट और चाटसू पर भी आक्रमण कर वहा के लोगो से दण्ड लिया। ठाकुर दुर्जनसिंह ने अपने सैनिको के साथ महाराणा के इस विजय अभियान में भाग लिया।

मुगल सल्तनत के लिये बादशाह शाहजहाँ के पुत्रो में हुए गृह युद्ध में शाहजादा औरंगजेब विजयी रहा जो दिल्ली का बादशाह बना। महाराणा राजसिंहने दूरदर्शिता के साथ प्रारम्भ से ही औरंगजेब का पक्ष लिया था। उसके कारण प्रारम्भ में कुछ समय तक बादशाह औरंगजेब और महाराणा राजसिंह के बीच अच्छे सम्बन्ध रहे और औरंगजेब ने महाराणा को प्रसन्न करने के लिये शाहजहाँ के काल मे मुगल सीमा मे मिला लिये गये मेवाड के परगनो पर महाराणा के अधिकार को स्वीकार किया तथा डूंगरपुर, बांसवाडा, प्रतापगढ आदि को महाराणा राजसिंह के अधीन मानते हुए फरमान निकाला।

बादशाह औरंगजेब के फरमान के अनुसार महाराणा राजसिंह ने डूंगरपुर बांसवाडा एव प्रतापगढ राज्यो को अपने अधीन करना चाहा, किन्तु वहा के राजा इसके लिये तैयार नही हुए। इस पर वि स 1715, वैशाख वदि 7 (5 अप्रेल, 1659 ई) को मेवाड के प्रधान पचोली फतहचन्द के नेतृत्व मे बांसवाडा पर चढाई करने के लिये पाच हजार सेना भेजी जिसमे बाणेराव के ठाकुर दुर्जनसिंह के अलावा सलूम्बर का रावत रघुनाथसिंह, भीण्डर का महाराज मोहकमसिंह देसूरी का सोलंकी दलपत, ईडर का राठोड जोधसिंह, कोठारिया का रावत चौहान रुक्मागद और उसका पुत्र उदयकरण, सिसोदिया माधवसिंह, रावत मानसिंह सारंगदेवोत, रावत रामसिंह शक्तावत गिरधर, शक्तावत सूरसिंह, झाला महासिंह, रावत रणछोडदास आदि सरदार शामिल थे। यह देखकर वहा के रावल समरसिंह ने महाराणा को एक लाख रुपया, दस गाव, देशदाण (चुंगी का अधिकार), एक हाथी और दस हथिनी देकर महाराणा की अधीनता स्वीकार करली। महाराणा ने उसे दस गाव, देशदाण और बीस हजार रुपये छोड दिये।[1]

1 वैद्यनाथ की प्रशस्ति। वीर विनोद भाग-2, पृ 382, राजप्रशस्ति महाकाव्यम् सर्ग 8, श्लोक 17-20

इसके बाद महाराणा राजसिंह ने स्वय सेना लेकर प्रतापगढ देवलिया के विरुद्ध मन्दसौर की ओर चढाई की और पचोली फतहचन्द को बासवाडे से प्रतापगढ की ओर भेजा। अत म वहा के रावल हरिसिंह को महाराणा की अधीनता स्वीकार करनी पडी। उसने पचास हजार रुपये, एक हाथी तथा एक हथिनी नजर की। इसी भाति डूगरपुर के रावल गिरधर ने भी महाराणा की सेवा स्वीकार कर ली। इस सम्पूर्ण सैनिक अभियान म मेवाड के अन्य प्रमुख सरदारो के साथ घाणेराव के ठाकुर दुर्जनसिंह अपने सैनिको को लेकर सम्मिलित हुए।

वि स 1719 (1662 ई) मे मेवाड के दक्षिणी भाग मेवल मे मीणा जाति के लोगो ने भारी उपद्रव किया। महाराणा ने उनको दबाने के लिये सेना भेजी जिसम मेवाड के अन्य प्रमुख सरदारो के अलावा घाणेराव के ठाकुर दुर्जनसिंह शरीक थे। सरदारो ने इन पर आक्रमण कर उनका बल तोड दिया।

वि स 1720 (1663 ई) मे महाराणा राजसिंह द्वारा सिरोही के राव अखेराज, जिसको उसका लडका उदयभान कैद कर स्वय गद्दी पर बैठ गया था, की मदद के लिये राणावत रामसिंह को सेना लेकर सिरोही भेजा गया। घाणेराव के ठाकुर दुर्जनसिंह तथा अन्य कई सरदार उसमे शरीक थे। अखेराज को वापस गद्दी पर बिठाया गया।

वि० स० 1718 (1662 ई०) मे महाराणा राजसिंह द्वारा मेवाड के सुप्रसिद्ध तालाब राजसमुद्र के निर्माण का कार्य शुरु किया गया। उस समय मेवाड मे भयानक अकाल पडा हुआ था। इसलिये प्रजा के सकट–निवारण हेतु एव अकाल पीडितो की सहायता के लिये उन्होने राज्यकोष से 1,05,07,608 रुपया खर्च कर काकरोली के निकट इस विशाल झील का निर्माण कराया। झील का निर्माण-कार्य वि० स० 1732 (1676 ई०) म समाप्त हुआ। बहुत बडा काम होने के कारण राजसमुद्र झील के निर्माण कार्य को कई विभागो मे विभाजित कर प्रत्येक विभाग अलग अलग सरदारो आदि को सौप दिया गया था। प्रसिद्ध है कि उक्त तालाब की कमलबुज की तरफ का बाध ठाकुर दुर्जनसिंह के निरीक्षण म बनकर तैयार हुआ था।[1]

घाणेराव की प्रजा के कल्याण, उन्नति और सुरक्षा हेतु जो व्यवस्था ठाकुर किशनदास ने अपने काल मे की थी, ठाकुर दुर्जनसिंह के काल मे वह व्यवस्था

1 राजड राण तणा खताला, खगवाहा चोकडी खणे।

(प्राचीन पद्य)

सुचारु रूप से चलती रही। ठाकुर दुर्जनसिंह के काल मे भी घाणेराव मे विद्वानों, ज्ञानियों एव लेखकों का सरक्षण एव पोषण होता रहा। इनके काल मे– वि स. 1714 म दवे गच्छा ने 'पार्थिव पूजा' ग्रथ की प्रति तैयार की। उसी वर्ष घाणेराव मे 'सक्राति चन्द्रमा विचार', 'सकट चतुर्थी विधान', 'विष्णु पजर स्तोत्र', 'रामरक्षा स्तोत्र', ब्रह्म क्वचम्' आदि ग्रथों की प्रतिया तैयार की गई। वि स. 1721 म कर्मचन्द ने नयनसुखकृत 'वैद्यमनोत्सव' की प्रतिलिपि तैयार की। वि स 172॰ मे जीवा ने नददास कृत 'मानमजरी नाममाला'[1] तथा आत्माराम ने 'एकादशी व्रत कथा' की प्रतिया तैयार की।

वि स 1732 (1675 ई०) मे ठाकुर दुर्जनसिंह का स्वर्गवास हो गया। उनके दो पुत्र गोपीनाथ और भीमसिंह थे।[2]

1 इस ग्रथ की प्रतिलिपि श्री नाऊजी (नारायणदास) के लिये तैयार की गई– "इति श्री नाम मजरी नन्ददासकृत सम्पूर्णमस्तु लिखतम्" सवत् १७२९ वर्षे शाके १५९४ प्रवर्तमाने महाराजाधिराज महाराव श्री पृथिराजजी विजय राज्ये वैशाख मासे कृष्ण पक्षे त्रियोदशा तिथौ शनिवासरे राजि श्री नाऊजी कस्य वाचानार्थे भट्टारिक श्री नेताजी तत्शिष्य जीवाकेन लिखत ॥

2 भीमसिंह को महाराणा की ओर से मुँडाड़ा की जागीर दी गई थी किन्तु आगे जाकर वह छूट गई। इस पर घाणेराव ठाकुर पद्मसिंह ने उनके वशजो को पचपुरा गाव जागीर में दिया, जो उनके अधिकार मे रहा।



ठाकुर गोपीना

ठाकुर दुर्जनसिंह के देहान्त के बाद उनके पुत्र गोपीनाथ वि० स० 17
(1675 ई०) मे घाणेराव के स्वामी हुए। उनका प्रारम्भिक जीवन अधिकाश
घाणेराव मे बीता। युवावस्था प्राप्त होने के बाद राजपूतो एव जागीरदा
की परिपाटी के अनुसार एव ज्येष्ठ पुत्र होने से वे घाणेराव जागीर की आन्त
सुरक्षा एव सुव्यवस्था मे हाथ बटाते थे, तथा मेवाड के महाराणा द्वारा घाणेर
ठाकुर को सैनिक कार्यवाहियो मे भाग लेने हेतु आमत्रित करने पर ठाकुर गोपीन
अपने पिता के साथ उन कार्यवाहियो मे भाग लेते थे। घाणेराव मे पिछली
पीढियो से राज्य परिवार मे तथा कस्बे मे सास्कृतिक उन्नति का जो वातावर
बन गया था, उससे कुँवरपदे मे गोपीनाथ को राजनीति, धर्म आदि विषयो
पर्याप्त शिक्षा मिली। यही कारण है कि उनके घाणेराव स्वामी होने के ब
आगामी वर्षो मे मेवाड मे जो राजनैतिक उतार-चढाव आये उनमे ठा
गोपीनाथ ने अत्यन्त बुद्धिमानी के साथ स्वय के कर्तव्य निश्चित किये।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, प्रारम्भ मे महाराणा राजसिंह के मुगल बादश
औरगजेब के साथ अच्छे सबध रहे, उससे महाराणा को मेवाड की परम्परा
अधिकाश भूमि पर अधिकार मिल गया था और मुगल दरबार मे भी उन
पद-वृद्धि हो गई थी।[1] किन्तु शीघ्र ही सबधो मे परिवर्तन आने लगा
वि० स० 1715 (1658 ई०) मे महाराणा राजसिंह ने किशनगढ

1 औरगजेब ने मेवाड के महाराणा राजसिंह की मन्सब बढाकर छ हजा
जात और छ हजार सवार कर दी थी। किन्तु मुगल-मेवाड सन्धि के अनुमा
महाराणा का स्वय मुगल बादशाह की सेवा से मुक्त होने के कारण इसक
व्यावहारिक कोई मूल्य नही था।

राजकुमारी चारुमती से विवाह कर लिया, जिससे औरंगजेब विवाह करना चाहता था। इससे औरंगजेब ने नाराज होकर बसावर और गयासपुर के पर्गने मेवाड़ से अलग कर दिये। वि० स० 1726 (1669 ई०) में जब बादशाह औरंगजेब हिन्दू धर्म विरोधी कार्यवाहियां कर रहा था, महाराणा राजसिंह ने गोवर्धन से बचाकर लाई गई वल्लभ सम्प्रदाय की श्रीनाथजी एवं द्वारकाधीश की मूर्तियो की रक्षा का उत्तरदायित्व लेकर उनकी सीहाड तथा कांकड़ोली में प्रतिष्ठा कराई। इससे बादशाह और महाराणा के मध्य अनबन और बढ़ गई। वि० स० 1736 (1679 ई०) मे बादशाह ने तमाम हिन्दुओं से जजिया कर वसूल करने की आज्ञा दी। महाराणा राजसिंह ने इसका विरोध किया। इससे बादशाह बहुत नाराज हुआ। उसी वर्ष महाराणा राजसिंह ने मारवाड़ के महाराजा जसवन्तसिंह, जिससे औरंगजेब नाराज था, की मृत्यु के बाद उनके पुत्र अजीतसिंह तथा ठाकुर दुर्गादास आदि राठौड़ सरदारों को मेवाड़ मे शरण दी, जबकि बादशाह ने उक्त महाराजा की मृत्यु होते ही मारवाड़ को अपने राज्य मे मिलाने के आदेश कर दिये थे। बादशाह ने महाराणा से अजीतसिंह को सुपुर्द करने की माग की, जिसको महाराणा ने स्वीकार नही किया। इस पर वि० स० 1736, भाद्रपद सुदि 8 (3 सितम्बर, 1679 ई०) को बादशाह ने मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी।

महाराणा राजसिंह ने बादशाह औरंगजेब को अप्रसन्न करने वाली जो कार्यवाहियां की, उनके भावी परिणामो से महाराणा अवगत थे। उन्होंने औरंगजेब की चढ़ाई के समाचार सुनकर अपने प्रमुख सरदारों और कुंवरों आदि को सलाह के लिये उदयपुर आमन्त्रित किया। घाणेराव ठाकुर गोपीनाथ को जब महाराणा का परवाना मिला तो वे तुरन्त उदयपुर के लिये रवाना हो गये। इसी भांति अन्य सरदार भी महाराणा के आदेश से राजधानी मे एकत्रित हो गये। महाराणा ने युद्ध विषयक मंत्रणा के लिये दरबार किया उसमे निम्नलिखित कुंवरों एवं सरदारों ने भाग लिया—राजकुमार जयसिंह, राजकुमार भीमसिंह, डूंगरपुर रावल यशकर्ण (जसवन्तसिंह), राणावत भावसिंह, महाराज मनोहरसिंह, महाराज दलसिंह, महाराणा के भाई अरिसिंह और उनके चार पुत्र भगवतसिंह, सुभागसिंह, फतहसिंह और गुमानसिंह, राव सबलसिंह चौहान, झाला चन्द्रसेन, रावत केसरीसिंह, देलवाड़े का झाला जैतसिंह, बिजोलिया का पवार बैरिसाल बेगूं का रावत महासिंह, सलूम्बर का रावत रतनसेन, सावलदास, रावत मानसिंह, पारसोली का राव केसरीसिंह चौहान, भीण्डर का मोहकमसिंह, मारवाड़ का राठौड़ दुर्गादास, मारवाड़

का राठोड सोनिग, विक्रम, रावत रूक्मागद, भाला जसवन्त, राठोड गोपीनाथ, राजपुरोहित गरीबदास, मट्टेचा अमरसिंह, खीची रामसिंह, डोडिया महासिंह, मंत्री दयालदास और अबू मलिक अजीज।[1]

सरदारो से मंत्रणा के पश्चात यह निर्णय किया गया कि बादशाह औरंगजेब के साथ युद्ध में उसी रणनीति पर अमल करना चाहिये, जिस पर कि बादशाह अकबर के विरुद्ध महाराणा प्रतापसिंह और महाराणा अमरसिंह चले थे। महाराणा रामसिंह ने राजपरिवार तथा मेवाड और मारवाड के सामन्तों एवं राज्याधिकारियो के परिजनो को सुरक्षित स्थानो पर भेज दिया और स्वयं सामंतो एवं सैनिको को लेकर भोमट के घने पर्वतीय प्रदेश की ओर चल दिये। उन्होने मैदानी भाग से नगरों तथा कसबों की प्रजा को भी पहाडो में बुला लिया। उन्होने मेवाड के पर्वतीय भूभाग में प्रवेश के सभी रास्तो पर सैनिक टुकडियां नियत कर उनको बन्द कर दिया। घाणेराव ठाकुर गोपीनाथ एवं रूपनगर के सोलंकी विक्रमसिंह को देसूरी की नाल के गोडवाड की ओर से प्रवेश मार्ग को रोकने और उसकी रक्षा करने के लिये नियत किया। उन्होने बादशाह द्वारा देसूरी के मार्ग से मेवाड पर आक्रमण हेतु हसनअलीखां के नेतृत्व में भेजी गई बारह हजार मुगल सेना को रोक दिया और उस पर भीषण आक्रमण कर पीछे खदेड दिया।[2]

बादशाह औरंगजेब ससैन्य माडल होते हुए दबारी पहुँचा। देबारी के घाट की रक्षार्थ नियुक्त राजपूत सेना से लडते हुए उदयपुर पहुँचा, जो खाली पडा था। वहां से औरंगजेब ने हसनअलीखां को बडी सेना के साथ पश्चिमोत्तर पहाडों में भेजा। मुगल सेना की बहुत हानि हुई और वह असफल होकर लौट आई। राजपूतो के भीषण आक्रमणो और विनाशात्मक कार्यवाहियो के कारण मुगल सैनिक अत्यन्त भयभीत हो गये। बादशाह स्वयं उदयपुर से ससैन्य बाहर निकल आया और शाहजादा अकबर को चित्तौड की रक्षा करने तथा मेवाड के पहाडी भाग को घेरने का कार्य देकर अजमेर लौट गया।[3]

बादशाह के अजमेर रवाना होते ही राजपूत पहाडो से निकल कर मुगल थाना पर हमला करने लगे, महाराणा ने कई स्थानो पर पुनः अपने थाने नियत

---

1 राजविलास, विलास 10, पद्य 54-67
2 घाणेराव ठिकाने के प्राचीन दस्तावेज।
3 ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ॰ 561

र दिये और बदनोर एव अजमेर की ओर के इलाको पर कब्जा कर लिया। वाड मे मुगल सेना के लिये आने वाली रसद सामग्री लूट ली गई। इतना ही ही कुंवर भीमसिंह ने गुजरात की ओर ईडर पर आक्रमण किया और वडनगर और अहमदनगर को लूटा। इसी भांति मंत्री दयालदास ने मालवे पर आक्रमण कर उसको लूटा। शाहजादा अकबर राजपूतो की इन कार्यवाहियो को नही रोक सका और मुगल सेनापतियों को पुन पर्वतीय भाग मे हमला करने हेतु भेजने मे असफल रहा।[1]

उसी समय कुंवर जयसिंह ने भगवन्तसिंह, चन्द्रसेन झाला, घाणेराव ठाकुर गोपीनाथ, चौहान सबलसिंह, चूंडावत रतनसिंह, पवार बैरिसाल, रावत केशरीसिंह, रावत रुक्मागद, खीची रावरतन, मोहकमसिंह, चौहान केसरीसिंह, कुंवर गगादास, माधवसिंह चूंडावत, रावत मानसिंह, कान्हा शक्तावत, झाला जसवन्त, सिंह और झाला जैतसिंह आदि सरदारो के साथ चित्तौड इलाके मे आकर अकबर की सेना को पराजित किया, जहा से अकबर को पीछे हटना पडा। अकबर मार्ग बदल कर नाडोल पहुंचा और देसूरी की मार्ग से मेवाड मे घुसना चाहा। उस समय कुंवर भीमसिंह ने घाणेराव ठाकुर गोपीनाथ और सोलकी विक्रम को साथ लेकर घाणेराव के पास अकबर और मुगल सेनापति तहव्वरखा की बारह हजार सेना से बडा युद्ध किया। इस युद्ध मे ठाकुर राठोड गोपीनाथ और सोलकी विक्रम ने बडी वीरता दिखाई और शत्रु का खजाना और शस्त्रास्त्र आदि लूट लिये इससे मुगल सेना को पीछे हटना पडा। यह घटना अक्टूबर, 1680 ई० मे हुई।[2]

इस समय मुगल सेना को राजपूताने मे मारवाड और मेवाड के बड़े क्षेत्र मे लडना पड रहा था और सर्वत्र असफलता मिल रही थी, इसलिये मेवाड मे शाहजादा अकबर की पराज्य से बादशाह औरंगजेब ने महाराणा राजसिंह के साथ सुलह की बातचीत शुरू की किन्तु उसी समय 22 अक्टूबर, 1680 ई० को महाराणा राजसिंह का देहान्त हो गया। महाराणा जयसिंह के गद्दीनशीन होने के बाद औरंगजेब ने रहिल्लाखा को शाहजादा अकबर की मदद के लिये नाडोल भेजा। मुगल सेना पुन देसूरी के मार्ग मे बढी। आठ दिनो तक कुंवर भीमसिंह, राठोड गोपीनाथ और विक्रम सोलकी ने युद्ध करते हुए मुगल सेना को रोके रखा।[3]

---

1 वही, पृ० 563

2 ओझा—उदयपुर का इतिहास भाग–2, पृ० 565।

3 घाणेराव ठिकाने के प्राचीन दस्तावेज।

इस भांति देसूरी के मार्ग से मेवाड पर आक्रमण करने का मुगल सेना का प्रत्येक प्रयास असफल रहा। इस बीच शाहजादे अकबर ने बादशाह औरंगजेब के खिलाफ विद्रोह कर दिया।[1] इस पर बादशाह ने शाहजादा आजम को चित्तौड़ मे नियत किया। शाहजादा की आज्ञा से दिलावरखा मेवाड के पहाडो म बढा।[2] वह उस स्थान की ओर बढने लगा, जिस तरफ महाराणा जयसिंह अपने रनिवास सहित निवास कर रहे थे। महाराणा ने सलूम्बर के रावत चूण्डावत रत्नसिंह को दिलावरखा के मुकाबले के लिये भेजा। साथ ही अन्य सरदारों को उस मार्ग के इर्द-गिर्द के नारो एवं अन्य घाटो पर नियुक्त कर दिया। दिलावरखा को गोगूंदे की घाटी मे घेर लिया लिया गया। घाणेराव ठाकुर गोपीनाथ थसार के घाटे के नाके पर तैनात थे। गोगूंदे के घाटे पर रावत रत्नसिंह से दिलावरखां का मुकाबला हुआ। राजपूतो के आक्रमण से मुगल सेना पीछे हटी और दिलावरखा मार्ग बदल कर थसार के घाटे की ओर बढा परन्तु वहा ठाकुर गोपीनाथ उस से मुकाबले के लिये ससैन्य डटे हुए थे। गोपीनाथ ने मुगल सेना पर रात्रि के समय अचानक आक्रमण कर दिया जिससे मुगल सेना का व्यूह भग हो गया और मुगल सैनिक भयभीत होकर पीछे हटने लगे। चारो ओर से घिर गई मुगल सेना को बाहर निकलना कठिन हो गया। राजपूत सैनिक उन पर निरन्तर छापामार युद्ध प्रणाली से जन धन की हानि पहुचाने लगे। दिलावरखा की बहुत बुरी हालत हो गई, उसके सैनिक भूखों मरने लगे अथवा राजपूतो द्वारा मारे जाने लगे। उसको बाहर निकलने का कोई रास्ता नही मिला। अत मे एक ब्राह्मण को एक हजार रुपया देकर उसकी सहायता से वह रातो रात एक मार्ग से घाटी के बाहर निकल आया। रावत रत्नसिंह ठाकुर गोपीनाथ आदि सरदारो ने भागती हुई मुगल सेना पर पीछे से भीषण हमले किये। दिलावरखा इतना घबरा गया कि वह पीछे भी नही मुडा और जन-धन की हानि उठाते हुए चित्तौड चला गया।[3]

---

1 1 जनवरी, 1681 को शाहजादा अकबर ने अपने को बादशाह घोषित किया और 2 जनवरी को अजमेर मे बादशाह औरंगजेब पर आक्रमण करने के लिये अपने राजपूत सहयोगियो के साथ प्रस्थान करने का निश्चय किया।

2 उसके आक्रमण का मार्ग देबारी की ओर से होना चाहिये।

3 राजप्रशस्ति में उल्लेख है कि भोजन के अभाव से दिलावरखा के लगभग चार सौ आदमी प्रतिदिन मरते थे।

ख्यातो मे उल्लेख है कि इस युद्ध मे ठाकुर गोपीनाथ ने मदार गाव तक शत्रु सेना का पीछा करते हुए मुगल सेना पर भीषण आक्रमण किया था और बडी सख्या मे मुगल सैनिको का सफाया कर दिया था। वहा से मुगल सेना भाग निकली। इस स्थान पर ठाकुर गोपीनाथ द्वारा की गई वीरतापूर्ण कार्यवाही के कारण मदार गाव[1] आज तक ठाकुर गोपीनाथजी का मदार कहलाता है। ऐसा भी प्रसिद्ध है कि महाराणा जयसिंह ने ठाकुर गोपीनाथ की वीरता से प्रसन्न होकर यह मदार गाव ठाकुर गोपीनाथ को प्रदान कर दिया था।

महाराणा राजसिंह के युद्ध-कौशल के कारण मुगल बादशाह औरगजेब की मेवाड विजय के तमाम प्रयत्न विफल हो गये थे दूसरी ओर मारवाड राज्य मे राठौडो ने लूटपाट एव अराजकता मचा कर बादशाही आधिपत्य को अस्थिर कर दिया था। ऐसे ही समय मे महाराणा राजसिंह और राठौड दुर्गादास ने औरगजेब को परास्त करने एव मुगल सल्तनत मे बखेडा पैदा करने की दृष्टि से शाहजादे मुअज्जम को अपनी ओर मिलाने का प्रयास किया था, किंतु वह नहीं माना। उसके बाद शाहजादे अकबर को राजपूतो की मदद से मुगल बादशाह बनने का लालच दिया गया। शाहजादे अकबर को औरगजेब की राजपूत-विरोधी कार्यवाहियों के दुष्परिणाम नजर आ रहे थे। वह मान गया। अकबर महाराणा से मिला और उसने स्वय को मुगल बादशाह घोषित कर दिया। वह अपनी और राजपूतो की सेना लेकर बादशाह औरगजेब से लडने हेतु अजमेर के निकट पहु चा। किन्तु अकबर की सुस्ती और औरगजेब की चालाकी के कारण उसकी सेना बिखर गई और राजपूतो ने यह समझ कर कि अकबर गुप्त रूप से अपने पिता से मिला हुआ है,[2] उसका साथ छोड दिया।

अकबर का विद्रोह समाप्त हो जाने के बावजूद बादशाह औरगजेब राजपूताना की स्थिति से घबडाया हुआ था और दक्षिण मे मराठो की शक्ति बढ़ रही थी, जो मुगल सल्तनत को ही हिला रही थी। ऐसी स्थिति मे औरगजेब के लिये दक्षिण मे प्रस्थान करना जरूरी हो गया। बादशाह ने उससे पूर्व राजपूताने मे शान्ति कायम करने की दृष्टि से मेवाड से सुलह कर लेना आवश्यक समझा। शाहजादे आजमशाह

1 यह गाव उदयपुर से उत्तर पश्चिम मे 10 मील दूर है।

2 बादशाह ने शाहजादे अकबर के नाम पर जाली पत्र लिख कर दुर्गादास के पास पहु चा दिया था। पत्र मे अकबर को लिखा गया था कि तुमने राजपूतो को खूब धोखा दिया है। युद्ध मे उनको हरावल मे रखो ताकि कल प्रात काल युद्ध मे उन पर दोनो ओर से हमला किया जा सके।

ने महाराणा के काका श्यामसिंह[1] की मार्फत संधि की बातचीत प्रारम्भ की। महाराणा ने भी देश को अधिक उजाड़ होने से बचाने की दृष्टि से सम्मानजनक संधि कर लेना उचित समझा। फरवरी, 1681 ई० में मुगल सल्तनत और मेवाड़ के बीच युद्ध बन्द हो गया। यह संधि हो जाने पर राठोड़ दुर्गादास अकबर को भोमट, डूंगरपुर और राजपीपला के रास्ते से दक्षिण में मराठों की शरण में ले गया और सोनिंग आदि राठोड़ महाराजा अजीतसिंह को मेवाड़ से सिरोही इलाके में ले गये जहाँ कुछ वर्षों तक उनको गुप्त रूप में रखा गया।[2]

उक्त संधि के कुछ अर्से बाद महाराणा जयसिंह और उनके ज्येष्ठ कुंवर अमरसिंह के बीच वैमनस्य पैदा हो गया। महाराणा का एक कायस्थ स्त्री से गुप्त प्रेम था जिसके पति को बड़े पद पर नियुक्त कर रखा था। इसको लेकर कुंवर नाराज थे। उधर कुंवर के अधिक शराब पीने तथा अपनी पत्नी भटियाणी के लिये अलग महल बनवाने के कारण महाराणा उनसे अप्रसन्न थे। एक बार जब महाराणा जयसमुद्र गए हुए थे, कुंवर अमरसिंह का उक्त कायस्थ के साथ कुछ झगड़ा हो गया और उन्होंने क्रोधित होकर एक मस्त हाथी उदयपुर में छुड़वा दिया। कायस्थ महिला ने इस बात की शिकायत महाराणा से की। यह सुनकर महाराणा उदयपुर पहुँचे किन्तु उसके पहिले ही कुंवर उदयपुर से निकल कर अपनी ननिहाल बूंदी चले गये। इस घटना से पिता पुत्र के बीच शत्रुता पैदा हो गई और मेवाड़ के सरदार भी दो पक्षों में विभाजित हो गये। महाराणा जयसिंह के भाई सूरतसिंह, रावत केसरीसिंह रावत महासिंह (सारंगदेवोत), कोठारियाराव उदयभान, देलवाड़े का राव सज्जा झाला और रावत अनूपसिंह खुले रूप से महाराणा के खिलाफ कुंवर के पक्षपाती होकर उनके साथ चले गये। उस समय महाराणा के पक्षधर सरदारों में प्रमुख घाणेराव ठाकुर गोपीनाथ बिजोलिया का वैरिसाल सलूम्बर का कांधल और देवगढ़ी के मोलकी आदि रह गये थे।[3]

कुंवर अमरसिंह बूंदी से एक लाख रुपया और एक हजार सवारों की सहायता लेकर अपने सहयोगी सरदारों के साथ वापस मेवाड़ आये और उदयपुर पर अधिकार

---

1 महाराणा कर्णसिंह के पुत्र गरीबदास का बेटा जो उस समय शाही सेना में दिलेर खां के पास नियुक्त था।

2 ओझा— उदयपुर का इतिहास, भाग 2, पृ 587, 588

3 वही पृ 590

कर लिया। महाराणा ने जब कुंवर के उदयपुर की ओर अचानक सेना लेकर बढने की खबर सुनी तो अपने पक्षधर सरदारो की सलाह से वे उस समय युद्ध को टालने की दृष्टि से उदयपुर से निकलकर कुम्भलगढ की ओर चले गये, केलवाडे पहुचने पर कुम्भलगढ के किलेदार रूपचद देपुरा साधन, सामग्री लेकर महाराणा की सेवा मे उपस्थित हुआ।[1]

घाणेराव के ठाकुर गोपीनाथ पिता-पुत्र के कलह मे कुवर अमरसिंह के पक्षपाती नही थे। किन्तु पिछले कुछ समय से ठाकुर गोपीनाथ पर महाराणा की अप्रसन्नता चल रही थी। इसका लाभ उठाने की दृष्टि से कुवर अमरसिंह ने ठाकुर गोपीनाथ को अपनी ओर मिलाने के लिये उनको सन्देश भेजा। ठाकुर गोपीनाथ भी उस स्थिति मे कुवर के पास जाने की तैयारी करने लगे। जब इस बात की खबर केलवाडे मे महाराणा जयसिंह को लगी तो वे चिन्तित हो गये। महाराणा तुरन्त घाणेराव पहुचे और सीधे अन्त पुर मे ठाकुर गोपीनाथ की माता के पास चले गये जो उनके कुटुम्बी शक्तावत ठाकुर बल्लू के पुत्र कम्मा की पोती और सुजानसिंह की कुवरी थी।[2] बिना किसी सूचना और आडम्बर के महाराणा को अपने घर मे आये देखकर माजी साहिबा आश्चर्य मे पड गई और गद्‌गद् हो गई। उन्होने अकस्मात उनका घर पवित्र करने के लिये महाराणा के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। महाराणा ने उनको मेवाड मे गृह-कलह तथा कुवर अमरसिंह द्वारा उन पर चढाई करने की तथा ठाकुर गोपीनाथ के कुवर के पास जाने के लिये तैयार होने की बात सुनाई।[3]

जब ठाकुर गोपीनाथ को महाराणा के अचानक घाणेराव पहुचने और अन्त पुर मे माजी शक्तावतजी के पास पहुचने की खबर सुनी तो उनके विचार बदल गये। उनमे स्वामिभक्ति का जोश उमड आया और वे तत्काल ही अन्त पुर मे महाराणा के पास पहुचे। उन्होने महाराणा की विधिवत आवभगत की और घाणेराव मे उनके पधारने से अपने को कृतकृत्य माना। इस मेल मिलाप से हृदय की गाठें खुल गई और पुरानी बातें भुला दी गई। माजी

---

1 वही, पृ० 591

2 घाणेराव ठिकाने के प्राचीन दस्तावेज।

3 वही।

ने ठाकुर गोपीनाथ को स्वामीभक्ति पर अडिग रहने की सलाह दी। अन्त मे गोपीनाथ ने प्रतिज्ञा की कि वे महाराणा के विरुद्ध कुवर का साथ नही देंगे। इससे महाराणा की चिन्ता मिट गई।[1]

चू कि मेवाड के अधिकाश सरदार उस समय कुंवर अमरसिंह के साथ हो गये थे, इसलिये ठाकुर गोपीनाथ के आग्रह पर महाराणा घाणेराव ठहर कर ही सेना एकत्रित करने लगे। निम्बेदार रूपचद कुम्भलगढ का खजाना लेकर घाणेराव पहुचा उसके साथ ही महाराणा के अन्य पक्षधर सरदार भी अपनी जमीयतो के साथ घाणेराव पहुच गये। तदन्तर महाराणा ने सरदारो के नाम अपनी अपनी सेना के साथ घाणेराव मे उपस्थित होने के परवाने भेजे, जिसे प्राप्त कर दूसरे और तीसरे दर्जे के सरदारो के अतिरिक्त भोमट के भोमिये सरदार एव मेरवाडे के मेर आदि लडाकू लोग भी बडी सख्या मे महाराणा की सेना मे सम्मिलित हो गये। उधर ठाकुर गोपीनाथ के प्रयत्नो से मारवाड से ठाकुर दुर्गादास भी बडी संख्या मे राठोडो की सेना लेकर घाणेराव उपस्थित हो गये। इससे महाराणा के पास पचास हजार के लगभग सेना हो गई।[2]

जब उदयपुर मे कुंवर अमरसिंह ने महाराणा द्वारा घाणेराव मे बडी सख्या मे सेना एकत्रित करने के समाचार सुने तो वे अपनी सेना लेकर उदयपुर से जीलवाडे पहुचे।[3] उधर महाराणा भी घाणेराव से निकल कर देसूरी के घाटे के नीचे आ ठहरे। ऐसी स्थिति मे दोनो पक्षो म युद्ध अवश्यम्भावी था, जिसका परिणाम मेवाड का विनाश होता और मेवाड मे मुगलो का आधिपत्य हो जाता। दोनो पक्षो मे ऐसे बुद्धिमान लोग विद्यमान थे, जिनको इसकी चिन्ता हुई। ठाकुर गोपीनाथ, राठोड दुर्गादास और पुरोहित जगन्नाथ आदि पिता-पुत्र के इस कलह को किसी भाति शात करने के सबध मे प्रयास करने लगे।[4] रावत महासिंह और रावत गगदास ने महाराणा से निवेदन किया कि युद्ध से मेवाड का विनाश होगा और यदि कुवर मारे गये तो दुख उनको ही होगा। इसलिये कुवर को क्षमा कर उनको समझाने का प्रयत्न

1 वही।

2 वही।

3 ओझा–उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग, 2-पृ 59

4 वही।

किया जाना चाहिये। महाराणा ने उनकी बात मान ली। कुवर और उनके पक्षपाती भी समझौते के लिये राजी हो गये। अत मे कुवर को राजनगर की तीन लाख की जागीर देकर वि स 1748 (1691 ई) के प्रारम्भ मे समझौता कर लिया गया।[1]

पिता पुत्र के बीच समझौता कराने म घाणेराव ठाकुर गोपीनाथ ने प्रधान भाग अदा किया था, इसलिये उनका दोनो पक्षो पर अच्छा प्रभाव पडा। किंतु जिस भाति वे महाराणा का साथ देने को तैयार हुए और घाणेराव मे महाराणा को रख कर जिस प्रकार ठाकुर गोपीनाथ ने महाराणा की स्थिति को सुदृढ करने मे सहायता दी, उससे महाराणा जयसिंह बडे प्रसन्न हुए। उन्होंने ठाकुर गोपीनाथ की सेवा की कद्र करते हुए उनकी पद-वृद्धि करके उनको अपना मुसाहिब बनाया और उनकी जागीर म वृद्धि की और अन्य सुविधाए प्रदान की। इसके बाद ठाकुर गोपीनाथ महाराणा जयसिंह के सर्वाधिक विश्वसनीय सामत एव प्रधान सलाहकार रहे।[2]

1 वि स 1748, वैसाख सुदि 9 (15 अप्रेल, 1692 ई) को महाराणा ने ठाकुर गोपीनाथ को कपासन परगने मे गाव धमाणो और गाव नेवसो जागीर मे प्रदान किये।

2 वि स 1748, जेठ सुदि 11 (16 मई, 1692 ई) को एक परवाना द्वारा महाराणा ने यह आश्वासन दिया कि घाणेराव खालसा नही किया जायगा, वहा दरबार के आदमी नही भेजे जावेंगे। घाणेराव जागीर की सीमा का विस्तार किया

---

1 वही, पृ 592

2 घाणेराव ठिकाने के प्राचीन दस्तावेज। महाराणा और कुवर अमरसिंह के मध्य समझौता हो जाने के बावजूद पारस्परिक सदेह और कटुता समाप्त नही हुई। महाराणा उन सामतो से नाराज थे जो उक्त समझौते के बाद भी कुवर का साथ दे रहे थे, पारसोली का राव केसरीसिंह उनमे प्रमुख था। महाराणा उसकी गतिविधियो से सशकित होकर उसको मरवाना चाहते थे। महाराणा ने ठाकुर गोपीनाथ से सलाह की और उनकी राय के अनुसार केसरीसिंह को मरवाने की योजना बनाई। महाराणा ने केसरीसिंह को राजनगर से बादशाह के सबध म सलाह करने के लिये बुलाया। महाराणा ने ठाकुर गोपीनाथ के साथ अपने अन्य विश्वासपात्र सामत सलूम्बर के रावत काधल से बातचीत करके उसको केसरीसिंह को मारने के लिये तैयार कर लिया। सलाह-मशविरा

गया[1] तथा घाणेराव के महाजनो को पहिले दी गई दाण की छूट और सांडो की चराई पर पहिले की छूट जारी रखी गई।

3 प्रधान भीखू दोसी की वाड़ियां जो खालसे में थी वह वि सं 1748, आषाढ़ सुदि 11 (14 जून, 1692 ई) को ठाकुर गोपीनाथ को प्रदान की गई।

4 उनके बाद वि० सं० 1749 फाल्गुन सुदि 10 (6 मार्च, 1693 ई०) सोमवार को महाराणा ने ठाकुर गोपीनाथ की जागीर में वृद्धि करके 36000) की आय के निम्न गांव दिये जाने के आदेश दिये :—

गांव खीमेल	परगना	गोडवाड़
गांव नीपल्डा	,,	,,
गांव आदकीपुरा	,,	,,
गांव ऊधली	,,	,,
गांव पूनाडी	,,	,,
गांव सालेरा	,,	,,
गांव राजपुरा	,,	,,
गांव खारडा	,,	,,
गांव टीपरी	,,	,,
गांव छोडा	,,	,,
गांव दरवाणा	,,	,,

करने के लिये ठाकुर गोपीनाथ, रावत काघल और राव केसरीसिंह का उदयपुर से पांच मील दूर थूर के तालाब पर मिलने का तय किया गया। ठाकुर गोपीनाथ वहां समय पर नहीं पहुंच और काघल ने केसरीसिंह पर कटार से वार कर दिया किन्तु केसरीसिंह ने भी गिरते गिरते काघल पर कटार से वार कर दिया। दोनों ही मारे गये जिनकी छतरियां थूर तालाब के किनारे बनी हुई हैं। बाद में ठाकुर गोपीनाथ ने दोनों सरदारों के पक्षधरों के बीच होने वाली लड़ाई को समझा-बुझाकर चतुराई से टाल दिया

1 वही। 'गाम घाणेरा मे इतरी सीम, गाम घाणेरा माह गाम जोलो, गाम देवशड़ो गाम देसुरी दीमी सोहरी नाल री उनी खार ने सुनाडो सुधी पली उदतपथी सो मया कीधी। गाम बाणसारा तालाब दोसी छावडा सुधी नाल दीमी हुनी गड़ा सुधी।"

गाव लुणावास परगना गोड़वाड़
गाव आनो ,, ,,
गाव केसुदो ,, ,,
गाव मगाणो परगना कपासन
गाव रामाखेड़ा ,, ,,
गाव पीपला ,, ,,
गाव ऊपरव्हडो ,, ,,
गाव जमणाव ,, ,,
गाँव आतको परगना मदेसर
गाव साग सोमाणा रो
गाव ओधडी मगरा रो
गाव गौराणो[1]

5 वि० स० 1749, मगसर सुदि 15 (13 दिसम्बर, 1692 ई०) को महाराणा जयसिंह ने मदार के पटेलो के नाम परवाना जारी किया जिसमे पुरोहित शिवराम के खालसे किये गये खेत ठाकुर गोपीनाथ को दिये गये।[2]

6 वि० स० 1751, पोष वदि 2 (23 नवम्बर, 1694 ई) को महाराणा जयसिंह ने पुन घाणेराव की जागीर मे वृद्धि करते हुए पचमथो, बाली, सेणो, नाडोलाई और बरवासी गाव ठाकुर गोपीनाथ को जागीर मे प्रदान किये गये।[3]

ठिकाने के दस्तावेजो से ज्ञात होता है कि कुवर अमरसिंह ने ठाकुर गोपीनाथ को ठाकुर गाव सागुओ परगना पुर का प्रदान किया था। महाराणा जयसिंह के देहान्त के लगभग एक माह पूर्व कुवर अमरसिंह ने ठाकुर गोपीनाथ को पत्र लिखकर यह विश्वास दिलाया था कि घाणेराव ठिकाने के साथ उनकी रीति-प्रीति बनी रहेगी और ठाकुर की सम्मति के बिना कुछ भी नही किया जायगा।[4]

---

1 वही।
2 वही।
3 वही।
4 वही। 'स्व० श्री राठोड श्री गोपीनाथजी जोग लीखत कुवर अमरसींग रो जुहार वचावसी। अप्रच... मांहे ठाकुरा री रीत प्रतीत है ने ठाकुरा रे गने तो मेवाड रो भार है जो आच्छा ही करेगा हु तो ठाकुरा रे समती वीना काही नहीं करू। स १७५५ वर्षे भादरवा सुदी १ बुध'

महाराणा जयसिंह ने ठाकुर गोपीनाथ के पौत्र एवं सूरतसिंह पुत्र प्रतापसिंह को वि. सं. 1748, वैसाख सुदि 12 (17 अप्रेल, 1692 ई.) को लटाड़ा गाव जागीर मे प्रदान किया।[1]

महाराणा जयसिंह का देहान्त आसोज वदि 14, वि. सं. 1755 (21 सितम्बर, 1698 ई.) को हुआ और कुंवर अमरसिंह मेवाड की गद्दी पर बैठे। प्रारम्भ मे महाराणा अमरसिंह (दूसरे) और ठाकुर गोपीनाथ के बीच किसी प्रकार की कटुता अथवा शत्रुता का भाव प्रकट नहीं हुआ। अमरसिंह के राज्यारोहण के तत्काल बाद सिरोही, रामपुरा, डूंगरपुर, बासवाडा, देवलिया आदि के विरु महाराणा द्वारा जो सैनिक कार्यवाहिया की गई उनमे ठाकुर गोपीनाथ ने भा लिया और महाराणा उनकी वीरतापूर्ण सेवाओ से प्रसन्न भी हुए। किन्तु उन कुंवरपदे मे ठाकुर गोपीनाथ ने उनके विरुद्ध उनके पिता महाराणा जयसिंह साथ दिया था, यह बात महाराणा अमरसिंह नही भूल सके और न ठाकुर गोपी नाथ के विरोधी तथा ईर्ष्यालु लोगो ने उनको भूलने दिया। अन्ततः अम राज्यारोहण के चार साल बाद राख के ढेर के नीचे दबी उनकी प्रतिशोध अग्नि प्रज्वलित हो उठी।

बाकीदास री ख्यात मे लिखा है—'गोपीनाथ जी रामपुरै चालिया रा अमरसिंघ री वार मे। राणो अमरसिंघ फौज देने गोपीनाथ मेडतिया नूं सिरो माथै विदा कियो। इण बाहर (बारह) गाव सिरोही रा गोडवाड हेटे घालिया सिरोही री माडी रो दाण राणाजी ठैरायो गोपीनाथ री पोती री संबध राव कुंवर सुं हुवो'।[2]

महाराणा अमरसिंह के गद्दी पर बैठने के तत्काल बाद महाराणा द्वारा एक ओर डूगरपुर, बासवाडा और देवलिया के विरुद्ध तथा दूसरी ओर रामपुर और सिरोही के विरुद्ध सैनिक कार्यवाहिया की गई। महाराणा के राज्यारोह के अवसर पर डूंगरपुर के रावल खुमाणसिंह, बासवाडे के रावल अजबसि और देवलिये के रावल प्रतापसिंह ने उदयपुर मे उपस्थित होकर परम्परागत रिवाज के मुताबिक टीके का दस्तूर पेश नही किया। इस पर महाराणा ने तीनो के विरुद्ध सेना भेजी। डूगरपुर का रावल पराजित हुआ और उसने 175000 रुपयो का जुर्माना देकर महाराणा से सुलह करली और टीके का

1 वही।

2 बाकीदास री ख्यात, पृ. 63

3

दस्तूर भेज दिया। किन्तु रावत सुमाणसिंह और वासवाड़ा तथा देवलिया के राजाओं ने महाराणा के खिलाफ बादशाह औरंगजेब को शिकायतें की, जिससे वह महाराणा से नाराज रहा। महाराणा अमरसिंह भी तीनों से अप्रसन्न हो गये। किन्तु बादशाह के भय से जल्दी में कोई कार्यवाही भी नहीं की। उधर हाराणा ने माडलगढ़ परगने से बादशाही थानेदारों को निकाल दिया।[1]

उसी समय महाराणा ने रामपुरे में सैनिक कार्यवाही की। रामपुरे का राव गोपालसिंह दक्षिण में बादशाही सेवा में था, उस समय उसके पुत्र रत्नसिंह ने मुसलमान (इस्लामखां) बनकर और राज्य का नाम इस्लामपुर रखकर उस पर अधिकार कर लिया। बादशाह से न्याय नहीं प्राप्त होने पर गोपालसिंह सहायतार्थ महाराणा के पास चला आया। महाराणा ने ठाकुर गोपीनाथ को सेना देकर गोपालसिंह की सहायतार्थ भेजा। ठाकुर गोपीनाथ के सैनिक अभियान से रत्नसिंह की स्थिति बहुत कमजोर हो गई। महाराणा ने उस समय बादशाह की मर्जी के खिलाफ रामपुरा पर कब्जा कर लेना ठीक नहीं समझा। किन्तु उसके कुछ समय बाद रत्नसिंह मारणपुर के पास युद्ध में मारा गया और महाराणा की सहायता से गोपालसिंह ने रामपुरे पर कब्जा कर लिया।

महाराणा अमरसिंह ने बादशाही शर्त के मुताबिक एक हजार सैनिक शाही सेना की सहायता के लिये मालवे में भेज दिये थे जिसके बदले में महाराणा को सिरोही और आबूगढ़ की जागीर देने की आज्ञा शायस्ता खां ने दी और उसकी सूचना वहां के मुसलमान फौजदारों तथा अहलकारों आदि को दी गई। महाराणा की यह मांग थी कि मेवाड़ के पुर-माडल, बदनोर और माडलगढ़ परगने लौटाये जाय, किन्तु बादशाही दरबार से कोरे आश्वासन ही मिलते रहे। इधर सिरोही में मुसलमान फौजदारों और देवड़ा राजपूतों ने महाराणा का कब्जा होने में अड़चनें पैदा की। जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह ने भी कुछ समय तक महाराणा के विरुद्ध देवड़ा राजपूतों का समर्थन किया। मुगल दरबार ने महाराणा के पक्ष में कई फरमान भेजे गये किन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला। इस पर महाराणा के इशारे पर ठाकुर गोपीनाथ ने गोडवाड़ की ओर से सिरोही के इलाके पर आक्रमण किया और उसके बारह गांव

महाराणा जयसिंह ने ठाकुर गोपीनाथ के पौत्र एवं सूरतसिंह पुत्र प्रतापसिंह को वि. स. 1748, वैसाख सुदि 12 (17 अप्रेल, 1692 ई) को लटाडा गाव जागीर मे प्रदान किया।[1]

महाराणा जयसिंह का देहान्त आसोज वदि 14, वि. सं. 1755 (23 सितम्बर, 1698 ई) को हुआ और कुंवर अमरसिंह मेवाड की गद्दी पर बैठे। प्रारम्भ मे महाराणा अमरसिंह (दूसरे) और ठाकुर गोपीनाथ के बीच किसी प्रकार की कटुता अथवा शत्रुता का भाव प्रकट नही हुआ। अमरसिंह के राज्यारोहण के तत्काल बाद सिरोही, रामपुरा, डूगरपुर, बासवाडा, देवलिया आदि के विरुद्ध महाराणा द्वारा जो सैनिक कार्यवाहिया की गई उनमे ठाकुर गोपीनाथ ने भा लिया और महाराणा उनकी वीरतापूर्ण सेवाओ से प्रसन्न भी हुए। किन्तु उन कुवरपदे मे ठाकुर गोपीनाथ ने उनके विरुद्ध उनके पिता महाराणा जयसिंह साथ दिया था, यह बात महाराणा अमरसिंह नही भूल सके और न ठाकुर गोपी नाथ के विरोधी तथा ईर्ष्यालु लोगो ने उनको भूलने दिया। अन्तत: अप राज्यारोहण के चार साल बाद राख के ढेर के नीचे दबी उनकी प्रतिशोध क अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी।

बांकीदास री ख्यात मे लिखा है—'गोपीनाथ जी रामपुरै चालिया रा अमरसिंघ री वार मे। राणो अमरसिंघ फौज देनै गोपीनाथ मेडतिया नूं सिरो माथै विदा कियो। इण बाहर (बारह) गाव सिरोही रा गोडवाड हेटे घालिया सिरोही री माडी रो दाण राणाजी ठैरायो गोपीनाथ री पोती रो सवध राव कुवर सुं हुवो'।[2]

महाराणा अमरसिंह के गद्दी पर बैठने के तत्काल बाद महाराणा द्वा एक ओर डूगरपुर, बासवाडा और देवलिया के विरुद्ध तथा दूसरी ओर रामपु ओर सिरोही के विरुद्ध सैनिक कार्यवाहिया की गई। महाराणा के राज्यारोह के अवसर पर डूगरपुर के रावल खुमाणसिंह, बासवाडे के रावल अजबसि और देवलिये के रावल प्रतापसिंह ने उदयपुर मे उपस्थित होकर परम्पराग रिवाज के मुताबिक टीके का दस्तूर पेश नही किया। इस पर महाराणा तीनो के विरुद्ध सेना भेजी। डूगरपुर का रावल पराजित हुआ और उस 175000 रुपयो का जुर्माना देकर महाराणा से सुलह करली और टीके क

1 वही।

2 बांकीदास री ख्यात, पृ. 63

दस्तूर भेज दिया। किन्तु रावल सुमाणसिंह और बासवाड़ा तथा देवलिया के राजाओं ने महाराणा के खिलाफ बादशाह औरंगजेब को शिकायतें की, जिससे वह महाराणा से नाराज रहा। महाराणा अमरसिंह भी तीनों से अप्रसन्न हो गये। किन्तु बादशाह के भय से जल्दी में कोई कार्यवाही भी नहीं की। उधर महाराणा ने माडलगढ़ परगने से बादशाही थानेदारों को निकाल दिया।[1]

उसी समय महाराणा ने रामपुरे में सैनिक कार्यवाही की। रामपुरे का राव गोपालसिंह दक्षिण में बादशाही सेवा में था, उस समय उसके पुत्र रत्नसिंह ने मुसलमान (इस्लामखा) बनकर और राज्य का नाम इस्लामपुर रखकर उस पर अधिकार कर लिया। बादशाह से न्याय नहीं प्राप्त होने पर गोपालसिंह सहायतार्थ महाराणा के पास चला आया। महाराणा ने ठाकुर गोपीनाथ को सेना देकर गोपालसिंह की सहायतार्थ भेजा। ठाकुर गोपीनाथ के सैनिक अभियान से रत्नसिंह की स्थिति बहुत कमजोर हो गई। महाराणा ने उस समय बादशाह की मर्जी के खिलाफ रामपुरा पर कब्जा कर लेना ठीक नहीं समझा। किन्तु उसके कुछ समय बाद रत्नसिंह तारापुर के पास युद्ध में मारा गया और महाराणा की सहायता से गोपालसिंह ने रामपुरे पर कब्जा कर लिया।

महाराणा अमरसिंह ने बादशाही शर्त के मुताबिक एक हजार सैनिक शाही सेना की सहायता के लिये मालवे में भेज दिये थे जिसके बदले में महाराणा को सिरोही और आबूगढ की जागीर देने की आज्ञा शायस्ता खा ने दी और उसकी सूचना वहा के मुसलमान फौजदारों तथा अहलकारों आदि को दी गई। महाराणा की यह माग थी कि मेवाड के पुर-माडल, बदनोर और माडलगढ़ परगने लौटाये जाय, किन्तु बादशाही दरबार से कोरे आश्वासन ही मिलते रहे। उधर सिरोही में मुसलमान फौजदारों और देवडा राजपूतों ने महाराणा का कब्जा होने में अड़चनें पैदा की। जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह ने भी कुछ समय तक महाराणा के विरुद्ध देवडा राजपूतों का समर्थन किया। मुगल दरबार ने महाराणा के पक्ष में कई फरमान भेजे गये किन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला। इस पर महाराणा के इशारे पर ठाकुर गोपीनाथ ने गोडवाड़ की ओर से सिरोही के इलाके पर आक्रमण किया और उसके बारह गाव

1 वीर विनोद, भाग–2 पृ० 730

गोडवाड मे मिला लिये। ऐसा जान पडता है कि देवडा राजपूतो के विरोध के बावजूद महाराणा ने सिरोही का बडा भाग अपने अधिकार मे कर लिया था।

वि. स 1759 (1702 ई) म डूगरपुर के रावल खुमाणसिंह के देहावसान पर उसका पुत्र रामसिंह गद्दी पर बैठा। महाराणा नाराज तो थे ही, इस अवसर पर डूगरपुर के रावल को पूरी तरह अधीन करने की दृष्टि से उन्होंने ठाकुर गोपीनाथ को सेना देकर डूगरपुर रवाना किया।[1]

महाराणा ठाकुर गोपीनाथ से बदला लेने के लिये अवसर की इतजार म थे। यह उन्होने अच्छा अवसर देखा। सम्भवत उन्होने सोच समझ कर ही ठाकुर गोपीनाथ को डूगरपुर की ओर भेज दिया। फलत: उधर ठाकुर गोपीनाथ तो डूगरपुर के रास्ते मे थे और इधर महाराणा ने घाणेराव पर सेना भेज दी। उस समय गोपीनाथ के ज्येष्ठ कु वर सूरतसिंह घाणेराव मे थे। वे कुछ समय तक घाणेराव की रक्षा करते रहे और महाराणा की सेना को घाणेराव मे नही घुसने दिया। ठाकुर गोपीनाथ भी महाराणा की इस कार्यवाही के समाचार सुनकर डूगरपुर की ओर बढना रोककर घाणेराव लौट आये। मेवाड राजपरिवार के प्रति अपन पूर्वजो के स्नेह एव स्वामिभक्ति से पूर्ण सबधो तथा मेवाड के नरेशो द्वारा घाणराव राजपरिवार को दिया गया विश्वास, पद, प्रतिष्ठा आदि का स्मरण कर ठाकुर गोपीनाथ ने महाराणा की सेना के साथ युद्ध जारी रख कर बखेडा पैदा करना उचित नहा समझा। उन्होंने घाणेराव खाली कर दिया और वे अपन

---

1 घाणेराव ठिकाने के प्राचीन दस्तावेज। वि स 1759 मे रावल रामसिंह के डूगरपुर मे गद्दीनशीन होने के बाद डूगरपुर पर मेवाड की सेना के आक्रमण का उल्लेख मेवाड अथवा डूगरपुर के इतिहास म नही मिलता। यह उल्लेख मिलता है कि गद्दी पर बैठते ही रावल रामसिंह ने मेवाड वालो से अपने देश को बचाने के लिये बादशाह औरगजेब के पास हाजिर होकर शाही सेवा करने का निश्चय किया और डूगरपुर की जागीर का फरमान प्राप्त किया, जिससे महाराणा अमरसिंह (दूसरे) ने फिर उसस कोई छेडछाड नही की। (ओझा-डूगरपुर का इतिहास, पृ० 122) इससे यह जान पडता है कि यद्यपि महाराणा ने गोपीनाथ को डूगरपुर भेजा हो किन्तु घाणेराव पर सेना भेजने की महाराणा की कपटपूर्ण कार्यवाही के कारण गोपीनाथ के वापस लौट जाने से यह सैनिक कार्यवाही रुक गई। बाद मे रावल के बादशाही सेवा म जाकर सरक्षण प्राप्त करन के कारण महाराणा ने डूगरपुर पर आगे कोई कार्यवाही नही की।

परिवार सहित अपने ननिहाल रामपुरे चले गये। महाराणा ने घाणेराव को खालसा कर दिया।[1]

मेवाड के इस गृह-कलह की सूचना बादशाह औरंगजेब को मिली। वह मेवाड को कमजोर करने के लिये इस तलाश मे था कि वह मेवाड के सरदारो और महाराणा के बीच फूट पैदा कर सके और महाराणा के विरोधी सरदारो को अपनी ओर मिला कर उनका महाराणा के खिलाफ उपयोग कर सके। ठाकुर गोपीनाथ ने महाराणा राजसिंह और महाराणा जयसिंह के राज्यकाल म मुगल आक्रमणो को रोकने मे जो वीरतापूर्ण सेवाए की थी, उनसे भी बादशाह अवगत था। बादशाह ने अवसर का लाभ उठाने की दृष्टि से ठाकुर गोपीनाथ को शाही दरबार मे हाजिर होने का फरमान भेजा। महाराणा अमरसिंह को भी इसकी सूचना अपने वकीलों की मार्फत प्राप्त हुई। इस खबर से महाराणा का चिन्तित होना स्वाभाविक था। मुगल सेना को निरन्तर टक्कर देने वाले मेवाड के एक अत्यन्त विश्वसनीय एव स्वामीभक्त ठाकुर के मुगल दरबार मे उपस्थित होकर सेवा स्वीकार करने से निश्चय ही महाराणा की भारी बदनामी होती, साथ ही मेवाड के ऐसे वीर एव अनुभवी वयोवृद्ध ठाकुर की सेवाए मुगल बादशाह को प्राप्त होने से महाराणा की स्थिति मे निर्बलता आना निश्चित था। इसलिये महाराणा ने तुरन्त ही घाणेराव का ठिकाना पुन ठाकुर गोपीनाथ के नाम बहाल कर तत्क्षण उदयपुर हाजिर होने का परवाना भेजा।[2]

महाराणा की अनुचित एव अन्यायपूर्ण कार्यवाही से वयोवृद्ध ठाकुर गोपीनाथ अत्यन्त क्षुब्ध दुखी और चिन्तित थे। जब औरंगजेब का फरमान उनके पास पहुचा तो वे एक प्रकार से किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। अन्य राजपूत राज्यों की भाति मेवाड के भी राजपरिवार के सदस्य तथा अन्य सामन्तो के रिश्तेदार मुगल सेना मे जाते रहे थे। इसलिये यदि ठाकुर गोपीनाथ भी बादशाह का फरमान स्वीकार कर लेते तो कोई नई बात नही होती। किन्तु स्थिति के गूढ सन्दर्भ को वे समझते थे। जिन्होंने जीवन पर्यन्त मेवाड़ की रक्षार्थ महाराणा की सेवा की और मुगलों से टक्कर ली, अब उसी व्यक्ति से अपेक्षा की जा रही थी, कि वह मुगल दरबार मे हाजिर होकर मेवाड के महाराणा के खिलाफ मुगल षडयन्त्रो एवं कुचक्रो मे भाग ले। अपने पद,

1 वही।

2 वही।

प्रतिष्ठा और जागीर से वंचित किये जाने पर भी वयोवृद्ध ठाकुर के लिये मुगल सेवा स्वीकार कर लेना अत्यन्त कठिन था। इसी असमंजस की स्थिति में ही उनको काल ने आ घेरा और ज्येष्ठ विद 2, वि स. 1761 (10 मई, 1705 ई) को रामपुरे में ही 61 वर्ष की आयु भोगकर ठाकुर गोपीनाथ ने अपने शरीर का परित्याग किया।

ठाकुर गोपीनाथ वीर और पराक्रमी पुरुष थे। जब महाराणा राजसिंह ने बादशाह औरंगजेब की अत्याचारपूर्ण कार्यवाहियो का मुकाबला करने का निर्णय किया, उस समय ठाकुर गोपीनाथ मेवाड के उन प्रमुख सरदारों में थे, जिन्होंने महाराणा का दृढतापूर्वक समर्थन किया। सितम्बर 1679 से फरवरी 1681 ई. तक हुए मुगल विरोधी संघर्ष में ठाकुर गोपीनाथ ने अद्भुत साहस, वीरता और पराक्रम का परिचय दिया। गोड़वाड की ओर से देसूरी के घाटे के द्वारा मुगल सेनाओं को मेवाड के पर्वतीय भाग में प्रवेश से रोकने का पूरा दायित्व एक प्रकार से ठाकुर गोपीनाथ पर ही छोडा गया था, जिसको उन्होंने पूरी क्षमता, संगठन-शक्ति एवं कौशल के साथ निभाया। उनके साथी देसूरी के घाटे पर अरावली की पर्वतीय चट्टानो के साथ मानवीय चट्टान के रूप में अटल रूप से अडे रहे और शक्तिशाली मुगल सेनाओ को इस रास्ते मेवाड में नही घुसने दिया और सारे प्रयासो को विफल कर दिया। इतना ही नही उन्होने छापामार युद्ध-प्रणाली द्वारा मुगल सेना को जन-धन की भारी क्षति पहुंचाई। यही कारण है कि महाराणा जयसिंह ने इनकी सेवाओ को पद, प्रतिष्ठा एवं जागीर आदि में वृद्धि करके पुरस्कृत किया और अपना मुसाहिब बनाया।

ठाकुर गोपीनाथ अपने वंश की गौरवपूर्ण परम्पराओं मे दृढ विश्वास रखने वाले स्वाभिमानी व्यक्ति थे। वे क्षुद्र स्वार्थों एवं राजनैतिक कुचक्रो से सदा दूर रहे और राज्य के हितो को सर्वोपरि स्थान दिया। पिता-पुत्र के झगडे मे उन्होंने महाराणा का पक्ष लेकर भी इस बात का प्रयत्न किया कि दोनो में सुलह हो जाय और मेवाड का अहित न हो। इससे उनकी दूरदर्शिता, उच्च विचार एवं आदर्श प्रकट होते हैं। जब महाराणा अमरसिंह ने प्रतिशोध की भावना से ठाकुर गोपीनाथ को पद, प्रतिष्ठा, जागीर सभी से वंचित कर दिया तो ठाकुर ने मेवाड की एकता और सुरक्षा के हित में विद्रोह का मार्ग नही अपनाया और उन्होंने चुपचाप घाणेराव का त्याग कर दिया।

मेवाड और मारवाड राज्यों के बीच पारस्परिक एकता एवं सहयोग की दृष्टि से भी उन्होंने कडी का कार्य किया। इससे ठाकुर गोपीनाथ के जीवित होने का पत

चलना है। महाराणा अजीतसिंह, राठोड सरदार दुर्गादास, सोनिंग आदि को घाणेराव मे रखना, मेवाड पहुचाना, दोनो शक्तियो के बीच मैत्री एव सहयोग की सन्धि कायम कराना आदि कार्य ठाकुर गोपीनाथ ने बडी सूझ-बूझ एव साहस के साथ सम्पन्न किया। यही कारण था कि जब महाराणा जयसिंह अपने पुत्र के विरुद्ध घाणेराव मे सेना एकत्रित कर रहे थे, ठाकुर गोपीनाथ के प्रयत्न से मारवाड से दुर्गादास के नेतृत्व मे बडी सख्या मे राठोड सरदार महाराणा का साथ देने के लिये उद्यत हो गये। यह प्रसिद्ध है कि जोधपुर के बालक महाराजा अजीतसिंह ठाकुर दुर्गादास के साथ मेवाड म शरण प्राप्त करने के लिये भागते हुए घाणेराव पहु चे तो राजपरिवार की सारी सम्पत्ति एव बहुमूल्य वस्तुए उनके साथ थी। ठाकुर गोपीनाथ ने सकट काल मे उनकी सम्पूर्ण सम्पत्ति की रक्षा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया था, जिसकी पूरी रक्षा करते हुए उन्होने सकट काल के बाद वापस लौटाया।[1]

वे एक अच्छे सैन्य सगठक, रणनीतिज्ञ दूरदर्शी शासक और चतुर राजनीतिज्ञ थे। अपनी नीतिज्ञता और प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण वे महाराणा जयसिंह सर्वाधिक विश्वासपात्र सलाहकार एव मुसाहिब बन गये।[2] उन्होने अपने पूर्ववर्ती शासको की भाति अपनी जागीर की आर्थिक उन्नति, शान्ति और व्यवस्था मे पूरी रुचि ली। उन्होंने घाणेराव की साहित्य, कला और ज्ञान की परम्परा को आगे बढाया। उनके काल मे विभिन्न प्रकार क विषयो से सबधित ग्र थ-लेखन का कार्य होता रहा। घाणेराव मे वि स 1759 (1702 ई) मे भट्टारक शोभजी के शिष्य बाणारस नामा ने महाभारत के वनपर्व तथा कर्मपर्व की प्रतिया तैयार की थी।[3]

---

1 वही।

2 महाराणा के साथ उनकी निकटता एव विश्वसनीयता, उनकी बुद्धिमता, गहरी सूझ-बूझ और दूरदर्शिता के कारण उनको 'गाढ़ा गोपीनाथ' कहकर सम्बोधित किया जाता था।

3 रा प्रा वि प्र उदयपुर सग्रहालय।

'इति श्री महाभारते शत सहस्राया सहितायां आरण्यक पर्व समाप्त। महाराजाधिराज महाराणा श्री अमरसीयजी विजय राज्ये, महाराजाधिराज श्री दुर्जनसिंह जी सुत महाराजाश्री गोपीनाथजी विजयराज्ये ...

ठाकुर गोपीनाथ के सूरतसिंह, अभेराम, अनोपसिंह, हिम्मतसिंह और उदयभाण नामक पांच कुंवर हुए। उनमें से उदयभाण का अपने पिता की विद्यमानता में वि. सं. 1751, ज्येष्ठ सुदि 4 (7 मई, 1695 ई.) को परलोकवास हो गया।[1]



भट्टारिका श्री श्री सोभाजी तत शिष्य वाणारसनगा लिखत। संवत् 1755 वर्षे मार्गशीर्ष मासे शुक्ल पक्षे द्वितीयायां तिथौ बुधवासरे मिदं आरण्यक समाप्तमिति'

1 घाणेराव ठिकाने के प्राचीन दस्तावेज।

'बांकीदास की ख्यात में' ठाकुर गोपीनाथ के पुत्रों की नामावली इस भांति दी गई है 1 सूरतसिंह 2 मोहणसिंह 3 अभेराम 4 अनोपसिं (पृ. 63)

ठाकुर सूरतसिंह

ठाकुर गोपीनाथ के रामपुर मे वि० स० 1761 (1704 ई०) में देहावसान के बाद ठाकुर सूरतसिंह बडी आयु मे उनके उत्तराधिकारी हुए। परलोकवासी ठाकुर के देहान्त के कुछ दिनो पूर्व ही महाराणा अमरसिंह का परवाना उनके पास पहुच चुका था। जब ठाकुर गोपीनाथ के निधन की सूचना महाराणा के पास पहुची तो उन्होने ठाकुर सूरतसिंह को परवाना भेजकर उदयपुर बुलाया और वि० स० 1761, कार्तिक वदि 11 (13 अक्टूबर, 1704 ई०) को पुन उनको घाणेराव का पट्टा प्रदान किया और इस परिवार को परम्परागत प्राप्त प्रतिष्ठा पुन. प्रदान कर उनको घाणेराव भेजा। इससे मेवाड के महाराणा तथा उनके प्रथम श्रेणी के शक्तिशाली सरदार और उनके परिवार के बीच विद्वेश समाप्त हो गया।

ठाकुर सूरतसिंह अपने परिवार सहित वापिस घाणेराव लौटे और जागीर की व्यवस्था करने लगे। लगभग दो वर्ष तक घाणेराव खालसे के अन्तर्गत रहा था। जिस भाति महाराणा ने ठाकुर गोपीनाथ को घाणेराव जागीर से वचित कर दिया था उससे ठाकुर की प्रतिष्ठा को बडी ठेस लगी। इस आकस्मिक और अकारण परिवर्तन का जागीर मे रहने वाले प्रजाजनो पर तथा जागीर की वर्षों से चली आ रही सुव्यवस्था पर दुष्प्रभाव पडना स्वाभाविक था। जैसाकि ऊपर कहा गया है कि घाणेराव के मेडतिया राठोड ठाकुर न केवल वीर योद्धा ही रहे अपितु उनके प्रयत्नो से घाणेराव ठिकाने मे आर्थिक खुशहाली बढी, घाणेराव एक बडा व्यावसायिक केन्द्र बना तथा शिक्षा, साहित्य तथा गान व कार्यकलाप को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से भी घाणेराव ठाकुरो ने अभिरुचि ली। इस राजनैतिक परिवर्तन से निरन्तरता का क्रम जिस भाति

अचानक ही टूट गया, अनिश्चितता का जो वातावरण बना तथा जिस प्रकार ठिकाने में पूर्वगामी प्रशासन में विरोधी तत्वों का बोलबाला हो गया, उससे स्वभावतः उपरोक्त जनहितकारिणी प्रवृत्तियों को धक्का लगा। स्वयं ठाकुर सूरतसिंह के मन और मस्तिष्क पर अपने पिता तथा परिवार के साथ महाराणा द्वारा किये गये अन्याय और अपमान का प्रभाव पड़ा था। इन सब बातों के होते हुए भी ठाकुर सूरतसिंह ने पुनः प्रजाजन में विश्वास उत्पन्न करने और जागीर के शासन को पुनः व्यवस्थित करने की दृष्टि से आवश्यक कदम उठाये।

दक्षिण से बादशाह औरंगजेब द्वारा मेवाड़ के शक्तिशाली ठाकुर गोपीनाथ को अपनी ओर मिलाने के प्रयास के कुछ समय बाद ही 21 फरवरी, 1707 ई० को मुगल बादशाह का दक्षिण में ही देहान्त हो गया। औरंगजेब की मृत्यु होते ही सम्पूर्ण मुगल साम्राज्य तहसनहस होने लगा और मुगल राजपरिवार में राज्याधिकार के लिये गृहयुद्ध छिड़ गया। मुगल साम्राज्य की इस दुर्व्यवस्था का अवसर देख कर 1709 ई० में महाराणा अमरसिंह ने पुर, माडल आदि परगनों पर अपनी सेना भेजकर पुनः अधिकार कर लिया।[1] इसी समय नया बादशाह बहादुरशाह दक्षिण से लौटा तो महाराणा ने विचार किया कि पुर, माडल परगना पर अधिकार कर लेने और जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह और आम्बेर के महाराजा जयसिंह को अपने राज्य[2] वापस जीतने में सहायता

1 पुर, माडल और बदनोर के परगने 24 जून, 1?68 ई० की मुगल–मेवाड़ सुलह के मुताबिक महाराणा जयसिंह ने बादशाह औरंगजेब को जजिये के बदले देना स्वीकार किया था। उसके तीन वर्ष बाद बादशाह ने ये परगने इस शर्त पर महाराणा को वापस लौटा दिये थे कि महाराणा एक लाख रुपया वार्षिक जजिया के तौर पर अजमेर के सरकारी खजाने में जमा कराते रहें। परन्तु महाराणा ने यह रुपया मुगल खजाने में जमा नहीं कराये। इसलिये ये परगने वापस जब्त कर लिये गये।

2 महाराजा जयसिंह आम्बेर पर पुनः अधिकार प्राप्त करने तथा महाराजा अजीतसिंह जोधपुर पर अधिकार प्राप्त करने के लिये बादशाह बहादुरशाह के साथ दक्षिण गये थे। किन्तु सफलता नहीं मिलने पर वे लौट कर मेवाड़ आये। उस समय तक मेवाड़ के महाराणा की ताकत का मुगल दरबार में भारी प्रभाव चला आ रहा था। मुगल बादशाह औरंगजेब का अन्तिम प्रयास भी असफल हो गया था और मेवाड़ की शक्ति ज्यों की त्यों कायम रही थी। इसलिये मुगल अधिकारी सदा मेवाड़ की शत्रुता से बचना चाहते थे। वे इस बात

करने के कारण बादशाह नाराज होकर मेवाड़ पर आक्रमण कर सकता है, अत सेना लेकर पहाड़ों में जाने का विचार किया। किन्तु बादशाह को सिक्खों के विद्रोह का दमन करने के लिये पंजाब जाना था, इसलिये उसने तसल्ली पत्र लिखकर महाराणा के पास भिजवा दिया था। इसके बाद महाराणा ने इन परगनों पर अपने अधिकार के संबंध में नये बादशाह से फरमान प्राप्त करने का प्रयास शुरू किया। महाराणा को इसमें सफलता नहीं मिली, क्योंकि इसी बीच हिन्दू राजाओं की तरफदारी करने वाला वजीर मुनीमखा खानाखाना मर गया और उसके बाद नया वजीर जुल्फिकारखा उससे कट्टर विरोधी नीति वाला व्यक्ति था। उसने मुगल बादशाह से फरमान निकलवाकर पुर, माडल वगैरह परगने मेवाती रणबाजखा तथा माडलगढ़ परगना जागीर के राव राठौड़ इन्द्रसिंह को दिलवा दिये। राठौड़ इन्द्रसिंह ने मेवाड़ के महाराणा की शत्रुता नहीं मोल लेने की दृष्टि से जागीर लेने से इन्कार कर दिया।

इसी बीच वि स 1767, पौष सुदि 1 (10 दिसम्बर, 1710 ई) को महाराणा अमरसिंह दूसरे का देहान्त हो गया और महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) मेवाड़ की गद्दी पर बैठे। महाराणा संग्रामसिंह के गद्दीनशीन होते ही मुगल दरबार स्थित मेवाड़ के वकील किशोरदास की मार्फत महाराणा को यह सूचना मिली कि बादशाह द्वारा रणबाजखा को पुर, माडल के परगनों का अधिकार दे दिया गया है और वह शीघ्र ही शाही सेना लेकर उन पर कब्जा करने के लिये प्रस्थान करेगा।[1]

से भी आतंकित रहते थे कि मेवाड़ के नेतृत्व में राजपूत राज्यों का कोई मुगल विरोधी संगठन न खड़ा हो जाय। जब उपरोक्त दोनों महाराजा उदयपुर पहुँचे तो महाराणा अमरसिंह ने न केवल उनका स्वागत किया, अपितु बादशाह को उनको अपने राज्य लौटाने का पत्र लिखा। जब बादशाह पर उसका असर नहीं हुआ तो महाराणा ने दोनों को सहायता देकर अपने अपने राज्यों पर अधिकार करा दिया था (1708 ई०)।

1 शाहजादा मुइज्जुद्दीन वजीर जुल्फिकार खा द्वारा बादशाह से यह फरमान प्राप्त करने में सहयोगी रहा। किन्तु शाहजादा अजीमुश्शान इस निर्णय के खिलाफ था। उसने मेवाड़ के वकील को यह इशारा किया था कि परगनों पर शाही सेना का अधिकार हरगिज मत होने दो। मेवाड़ वकील किशोरदास ने यह सूचना महाराणा को भिजवा दी।

जब महाराणा संग्रामसिंह को यह सूचना मिली कि रणबाजखां पुर, माडल के परगनों पर अधिकार करने के लिये शाही सेना लेकर मेवाड़ की ओर आ रहा है तो महाराणा ने अपने समस्त सरदारों को सलाह के लिये उदयपुर बुलाया। घाणेराव ठाकुर सूरतसिंह भी उदयपुर पहुंचे। महाराणा ने मुगल सल्तनत की स्थिति तथा वकील किशोरदास के पत्र के सम्बन्ध में बताया। इस पर सभी ने एकमत होकर बादशाही सेना से लड़ाई करने की सलाह दी। इस पर महाराणा ने शाही सेना से युद्ध करने के लिये अपनी सेना रवाना की। इस सेना में घाणेराव ठाकुर सूरतसिंह अपने सैनिकों सहित शामिल हुए। उनके अतिरिक्त रावत माहव (महासिंह सारंगदेवोत बाठरड़े का), रावत देवभान (कोठारिया का), सूरजसिंह राठोड़ (लीमाड़े के अमरसिंह का पुत्र) सांगा द्वारा वत (देवगढ़ का), देवीसिंह मेघावत (वेगू का) रावत विक्रमसिंह, रावत सूरतसिंह (रावत महासिंह का भाई) रावत मोहनसिंह मानावत, डोडिया हठीसिंह (नवलसिहोत), पीथल शक्तावत, रावत गंगदास (बानसी का), सूरजमल सोनगरा (रूपनगर का), झाला मज्जा कन्तरा (देलवाड़े का), मधुकर शक्तावत, सामन्तसिंह (सलूम्बर रावत केसरीसिंह का भाई), दौलतसिंह चूंडावत, रावत पृथ्वीसिंह दूदावत (आमेट का) राठोड़ जयसिंह (बदनोर का), दलपत का पुत्र भारतसिंह (शाहपुरे का), जसकरण कानावत, महता सावलदास, कान्ह कायस्थ (छीतरोत), राणावत संग्रामसिंह सबलावत (खैराबाद का) और राठोड़ साहबसिंह, (रूपाहेली) वालों का पूर्वज आदि मेवाड़ की सेना में शरीक थे।

खारी नदी[1] के पार बांदनवाड़े के निकट दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। मेवाड़ की सेना की विजय हुई और मेवाती रणबाजखां अपने भाई नाहरखां तथा अन्य पुत्रों के साथ युद्ध में मारा गया। दीनदारखां घायल होकर बची खुची सेना लेकर अजमेर लौटा। उस सेना का सामान मेवाड़ के सरदारों ने लूटा। इस युद्ध में रावत महासिंह सारंगदेवोत और ठाकुर दौलतसिंह चूंडावत मारे गये। बदनोर ठाकुर राठोड़ जयसिंह, घाणेराव ठाकुर राठोड़ सूरतसिंह, सामन्तसिंह आदि अनेक सरदार घायल हुए। घाणेराव ठाकुर सूरतसिंह की वीरता से प्रसन्न होकर महाराणा ने वि स 1767 आषाढ़ सुदि 2 (7 जून, 1711 ई) को घाणेराव ठाकुर को एक घोड़ा और सिरोपाव भेजने का परवाना भेजा।[2]

---

1 अजमेर से 27 मील दूर दक्षिण में स्थित।

2 वीर विनोद और जयमल वंश प्रकाश में इस युद्ध में भाग लेने वाले मेवाड़ के सरदारों के बहुत कम नाम दिये गये हैं। ओझा ने आशिया मानसिंह रचित

वि० सं० 1771 (1714 ई०) में ठाकुर सूरतसिंह का देहान्त हो गया। इन्होंने दस वर्ष तक घाणेराव ठिकाने का शासन किया। ठाकुर सूरतसिंह धीर और वीर व्यक्ति थे। उन्होंने अपने पूर्वजों की भांति वीरता और युद्ध कौशल दिखाया जिसके लिये वे महाराणा सग्रामसिंह द्वारा पुरस्कृत किये गये।

ठाकुर सूरसिंह के दो पुत्र प्रतापसिंह और पृथ्वीराज हुए। छोटे पुत्र पृथ्वीराज के वंशजों की जागीर मागलिया के गुढे में रही।

'माहवजस प्रकाश' डिंगल भाषा के रूपक ग्रन्थ के आधार पर नाम दिये है। किन्तु श्री ओझा की सूची में घाणेराव ठाकुर सूरतसिंह का नाम नहीं दिया गया है। घाणेराव ठिकाने की प्राचीन पत्रावली में ठाकुर सूरतसिंह द्वारा इस युद्ध में वीरता दिखाने और घायल होने का उल्लेख है। युद्ध में ठाकुर सूरतसिंह की वीरता से प्रसन्न होकर महाराणा ने उनको घोडा सिरोपाव भिजवाकर आरोग्य होने का परवाना भिजवाया था, जो इस प्रकार है—

'स्वस्ति श्री उदेपुरसुथाने महाराजाधीराज महाराणाजी सगरामसीघजी आदेसातु राठौड सुरतसीघ कस्य सुप्रसाद लीख्यते यथा अठारा समाचार भला है आपणा समाचार कहावजो। अप्रं मेवाया रा मामला माहे आछा हुआ सो सुत्र पाया घोडो सीरपाव मया हुवो है, सवत १७६७ वर्षे असाढ सुदी २ गुरु। इणी मोसर घणो आछो दीखायो।'

ठाकुर प्रतापसिंह (दूसरे)

ठाकुर सूरतसिंह का स्वर्गवास होने पर वि स 1771 (1714 ई०) मे उनके ज्येष्ठ पुत्र ठाकुर प्रतापसिंह बडी आयु मे घाणेराव की गद्दी पर बैठे।

ऊपर वर्णन किया गया है कि उनके पितामह ठाकुर गोपीनाथ के काल मे महाराणा जयसिंह द्वारा कु वर प्रतापसिंह को गोडवाड परगने मे लटाडा गाँव जागीर मे प्रदान किया गया था।[1] निश्चय ही वे अपनी प्रारम्भिक आयु मे पितामह ठाकुर गोपीनाथ एव पिता सूरतसिंह के साथ मेवाड मे हुई घटनाओ, लडाईयो आदि से सबधित रहे और घाणेराव राजपरिवार ने मेवाड की रक्षा एव आतरिक शान्ति-सुव्यवस्था मे जो सेवाए दी, उनमे कु वर प्रतापसिंह का हाथ रहा। रामपुरे से लौटने के बाद कु वर प्रतापसिंह घाणेराव जागीर के प्रशासनिक कार्य आदि मे हाथ बटाते रहे।

महाराणा सग्रामसिंह (दूसरे) के साथ घाणेराव परिवार के सबधो मे सुधार हुआ। महाराणा अमरसिंह (दूसरे) के काल मे उत्पन्न कटुता एव मनोमालिन्य समाप्त हो गया और पहिले की भांति पुन. मेवाड के महाराणा घाणेराव ठाकुर को वही विश्वास, अधिकार और प्रतिष्ठा देने लगे जो महाराणा जयसिह के काल तक मिले हुए थे।

महाराणा जगतसिंह ने ठाकुर किशनदास के काल मे घाणेराव पट्टे के निवासियो से दाण की लागत माफ कर दी थी। ऐसा जान पडता है कि ठाकुर गोपीनाथ के अतिम दिनो मे जब दो-तीन वर्ष घाणेराव खालसे मे रहा उस समय उक्त

1 घाणेराव ठिकाने के प्राचीन दस्तावेज।

आदेश की पालना नहीं की गई और ठाकुर सूरतसिंह के काल म भी वह आदेश रद्द रहा। अब ठाकुर प्रतापसिंह ने पुन महाराणा सग्रामसिंह से उक्त आदेश की पालना के लिये निवेदन किया, क्याकि राज्य के कर्मचारी घाणेराव ठिकाने के निवासिया से दाण की लागत राज्य म लेने की कार्यवाही कर रहे थे। इस पर महाराणा सग्रामसिंह ने वि स 1770, वैशाख वदि 3 (23 मार्च, 1714 ई) को एक परवाना जारी किया जिसमे राज्य के कर्मचारियो को घाणेराव पट्ट से दाण लेने की मनाई हो गई। किन्तु इस आदेश का पूरी तरह पालन नही होने पर महाराणा न वि स 1776 (1720 ई) म बदनोर, माडलगढ और नीमच के दाणियो के नाम सनद कर दी जिसमें ऊटा (साडा) की चराई की छूट को कायम रखते हुए महसूल नही लेने का आदेश दिया गया।

घाणेराव ठिकाने के प्राचीन दस्तावेजा को देखने से ज्ञात होता है कि महाराजा अजीतसिंह का जोधपुर पर अधिकार हो जाने के बाद महाराजा और घाणेराव ठाकुर के बीच मधुर सबध बने रहे। सकट काल म ठाकुर गोपीनाथ न महाराजा अजीतसिंह और उनके परिवार की जो सेवा की तथा मेवाड के महाराणा का सहयोग दिलवाने म जो योगदान दिया, उसको महाराजा अजीतसिंह नही भूले। वि स 1772, आसोज सुदि 3 (19 सितम्बर, 1715 ई) को मानवाडा मुकाम मे महाराजा अजीतसिंह ने ठाकुर प्रतापसिंह के लिय (टीके म) घोडा सिरोपाव खास रूपचद के द्वारा भिजवाया। तदन्तर घाणेराव ठाकुर के चाचा अमरसिंह (घाणेराव के ठाकुर हिम्मतसिंह के पुत्र) महाराजा अजीतसिंह की सेवा म उपस्थित हुए। इस पर महाराजा ने ठाकुर गोपीनाथ द्वारा मारवाड राज्य के लिए की गई सेवाओ का उल्लेख करते हुए अपने पास उपस्थित होने के लिये प्रसन्नता पूर्वक वि स 1773, ज्येष्ठ सुदि 5 (4 मई 1717 ई) को सरवोज गाव के मुकाम से ठाकुर प्रतापसिंह को खास परवाना भिजवाया। इसी भाति महाराजा न एक और दूसरा पत्र वि स 1775, भादवा वदि 9 (9 अगस्त, 1718 ई) को ठाकुर प्रतापसिंह को भिजवाया।[1]

बादशाह फर्रुखशियर के समय वि स 1774 म महाराणा सग्रामसिंह ने डूगरपुर, बासवाडा, देवलिया और रामपुरा आदि का फरमान अपने नाम करवा लिया था।[2] इसके बाद महाराणा ने इन इलाको पर फौजकशी की। बिहारीदास पचोली

1 घाणेराव ठिकाने के प्राचीन दस्तावेज।

2 यह फरमान मेवाड वकील बिहारीदास पचोली ने प्राप्त किया। यह व्यक्ति

ने एक सेना लेकर बागड पर चढाई की और वह देवलिया, बासवाडा और डूंगरपुर तीनों राज्यो के रईसो को लेकर उदयपुर आया।[1] इसके साथ ही बिहारीदास पचोली ने सेना लेकर रामपुरे पर भी अधिकार कर लिया। इससे पहिले महाराणा अमरसिंह (दूसरे) ने रामपुरे के राव गोपालसिंह को उसके पुत्र रत्नसिंह के विरुद्ध सहायता दी थी। रतनसिंह बाद मे सारगपुर के पास लडाई मे मारा गया था। गोपालसिंह ने महाराणा की सेना की सहायता से रामपुरे पर कब्जा कर लिया। गोपालसिंह, उसके पोते सग्रामसिंह तथा उसके सरदारो ने महाराणा को वि स 1774, भाद्रपद सुदि 2 (27 अगस्त, 1717 ई) को एक इकरारनामा लिख दिया, जिसके अनुसार रामपुरे का कुछ हिस्सा गोपालसिंह के पास रखा गया, शेष भाग मेवाड मे मिला लिया गया और गोपालसिंह ने महाराणा के अधीन रहकर दूसरे सरदारो की भाति नौकरी करना स्वीकार किया।[2]

रामपुरा तथा देवलिया, बासवाडा और डूंगरपुर पर सैनिक आक्रमण मे थाणेराव ठाकुर प्रतापसिंह शामिल थे। राव गोपालसिंह (रामपुरा का) के इकरारनामे की वार्ता मे ठाकुर प्रतापसिंह ने भाग लिया था। जो अन्य प्रमुख सरदार इस सैनिक अभियान तथा रामपुरा के इकरारनामे मे शरीक थे, वे हैं-राठोड दुर्गादास, रावत देवभाण, रावत सग्रामसिंह, झाला कल्याण, झाला अर्जुनसिंह, शक्तावत जैतसिंह, राव रघुनाथसिंह, राणावत सग्रामसिंह, राणावत कीर्तिसिंह रावत

बादशाह फर्रुखशियर का कृपापात्र बन गया था। बिहारीदास पचोली को बाद मे मेवाड राज्य का दीवान बनाया गया।

वि स. 1769 (1712 ई) मे बाहदशाह के मरने पर बादशाह फर्रुखशियर ने गद्दी पर बैठते ही हिन्दुस्तान के राजाओं का पक्ष प्राप्त करने के लिये जजिया माफ कर दिया। उस समय सैयद बन्धुओ ने अपनी शक्ति बढाने के लिये मेवाड से अच्छा सबध बनाया और मेवाड से निकले हुए तमाम परगने पुर, माडल आदि भी बहाल करा किये। बाद मे जब मक्का के हाकिम के लिखने पर बादशाह ने जजिया पुन जारी किया तो मुल्क मे पुन फसाद पैदा हो गया और फर्रुखशियर कैद होकर मारा गया। उसके स्थान पर रफीउद्दरजात बादशाह बनाया गया, जिसने पुन जजिया माफ किया।

1 वीर विनोद, भाग 2, पृ० 963

2 वीर विनोद भाग 2, पृ 957-961

देवीसिंह, रावत केसरीसिंह, राणावत रतनसिंह, बख्तसिंह, शक्तावत खुशालसिंह झाडिया मनोहरसिंह रावत हमीरसिंह, रावत सारंगदेव, रावत प्रथीसिंह, राव विक्रमादित्य आदि।[1] महाराणा ने रामपुरा का जो हिस्सा खालसा में मिलाया था उसके प्रबन्ध के लिये ठाकुर राठोड दुर्गादास को नियत किया।

मालवे की तरफ के पठानो (रुहेला)[2] ने इस समय मदसौर जिले में बडा उपद्रव मचाया और बहुत से लोगो को कैद कर लिया। महाराणा ने अपने सरदारों को उनसे लड़ने के लिये भेजा। ठाकुर प्रतापसिंह भी अपने सैनिक लेकर उसमें शरीक हुए। मेवाडी सेना ने पठानो को बुरी तरह परास्त कर मार भगाया। इस लडाई मे कानोड का रावत सारंगदेव बुरी तरह से घायल हुआ।[3]

महाराणा के साथ घाणेराव के संबधों मे सुधार के लिये घाणेराव ठाकुर प्रतापसिंह ने निरन्तर प्रयास किया। उन्होंने महाराणा के दरबार मे अपने ठिकाने एवं परिवार की प्रतिष्ठा एवं गौरव को पुनः कायम किया और महाराणा संग्रामसिंह ने ठाकुर प्रतापसिंह और उनके परिवार की सेवाओं को पूरी तरह मान्यता दी। महाराणा के दरबार मे ठाकुर प्रतापसिंह को जो बैठक प्राप्त थी, उससे इस बात का पता चल जाता है। महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के समय के दशहरे दरबार के चित्रपट के लेख मे दरबार मे शामिल सरदारो का उल्लेख है, जो इस भांति है–

'महाराजाधिराज महाराणा श्री संग्रामसिंहजी दसरावा रे दिन खेजडो पूजे पटारी माय दरीखाने बेठा, जीमणी बाजू रा ठाकुर श्री जी री पावती– राव गोपालसिंहजी, राज कीरतसिंहजी, रावत देवभाणजी, रावत केसरीसिंहजी, रावत संग्रामसिंहजी, रावत प्रथीसिंह जी, भाला अज्जोजी, रावत सारंगदेवजी, अखेराम काशीनाथोत।[4] डावी बाजूरा ठाकुरा रो साथ बैठा– रावत किसनसिंहजी

1 वही।

2 रामपुरे के राव गोपालसिंह के साथ हुए इकरारनामे में एक शर्त यह भी थी कि वह रुहेले पठानो को अपने यहा नही रखेंगे।

3 गौ० ही० ओझा–उदयपुर राज्य का इतिहास भाग–2, पृ० 615

4 घाणेराव ठाकुर काशीनाथ के द्वितीय पुत्र तथा ठाकुर प्रतापसिंह के चाचा।

बांसवाला (बांसवाडा) वालो, रावत रामसिंहजी (डूंगरपुर वाले), राव बख्तसिंहजी (बेदलेवाला) राठोड प्रतापसिंहजी (घाणेराव वाला) रावत देवीसिंहजी (बेगूं वाला) भारो कल्याणजी, महाराज दलसिंहजी, महाराज उमेदसिंहजी, डोडिया मनोहरसिंहजी, कुंवर जगतसिंहजी ..[1]

लगभग सात वर्ष तक घाणेराव का शासन करने के पश्चात ठाकुर प्रतापसिंह (दूसरे) वि. स 1777 (1720 ई) मे परलोक सिधारे। उनके एक पुत्र पद्मसिंह थे, जो उनके बाद घाणेराव के स्वामी हुए।

ठाकुर प्रतापसिंह धीर, वीर एवं बुद्धिमान व्यक्ति थे। वे कुशल योद्धा तथा बलशाली पुरुष थे।[2] उन्होंने अपने पूर्वजो की गौरवशाली शौर्य परम्परा को कायम रखा और मेवाड के दरबार मे अपने वश को प्राप्त परम्परागत पद प्रतिष्ठा को पुन कायम किया। उन्होंने अपने पूर्व शासको की भांति अपने यहा विद्वानो एवं ज्ञानियो को आश्रय देने की परम्परा को कायम रखा। उल्लेख मिलता है कि ठाकुर प्रतापसिंह के आदेश से भट्टारक शोभजी के शिष्य बाणारस नगराज ने महाभारत के गदापर्व की वि स 1773 मे घाणेराव मे प्रतिलिपि की।[3]

---

1 देखो वीर विनोद, भाग 2, पृ 977–78

2 प्रसिद्ध है कि एक बार महाराणा संग्रामसिंह (द्वितीय) ने ठाकुर सूरजसिंह को उदयपुर मे दशहरे के अवसर पर एक बलिष्ठ एव मदोन्मत्त महिष को तलवार से एक ही वार म बलिदान करने की आज्ञा दी। घाणेराव की ख्यात मे लिखा है कि ठाकुर सूरजसिंह ठिगणे कद के थे और महिष बलिष्ठ एव बडा था तथा उसके गले मे लोहे की सलाकें लगा दी थी जिसस तलवार का वार सहज मे नही हो सकता था। इसलिये उन्होंने कुंवर प्रतापसिंह को महिष का वध करने का संकेत किया। कुंवर प्रतापसिंह तत्काल ही तलवार निकाल कर आगे आये और एक ही वार मे महिष के दो टुकडे कर दिये। कहा जाता है कि महाराणा ने उसके बाद भविष्य मे *प्रथम वर्ग* केसरदारो से बलिदान कराने की प्रथा समाप्त कर दी।

3 'समाप्तश्चायं गदापर्वमिति' ॥सवत 773 वर्षे प्रथम ज्येष्ठ वदि 6 शनौ ॥ महाराजाधिराज महाराजा श्री प्रतापसिंघजी लिखावत पुस्तकमिद ।। भट्टारिका श्री सोभाजी शिष्य बाणारस नगराज लिखत। श्री घनवरपुर मध्ये।

ठाकुर पद्मसिंह

वि० स० 1777 (1720 ई०) मे ठाकुर पद्मसिंह घाणेराव की गद्दी पर ठे। ऐसा माना जाता है कि गद्दी पर बैठने के समय वे अल्पायु के थे और अपने पता के एक मात्र पुत्र थे।[1]

ऊपर कहा जा चुका है कि ठाकुर गोपीनाथ के समय मे जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद उनके पुत्र अजीतसिंह और राजपरिवार को भीषण सकट के समय घाणेराव मे शरण दी गई और राजसिंहासन सहित राज्य की एव राजपरिवार की सारी बहुमूल्य सम्पत्ति को घाणेराव मे सुरक्षित रखा गया था। घाणेराव ठाकुर के जोधपुर महाराजा के साथ सबध अत्यन्त स्नेहपूर्ण एव विश्वसनीय चले आ रहे थे। घाणेराव ठाकुर मेवाड–मारवाड के बीच मैत्रीपूर्ण सबधो के लिये कडी का काम करते रहे थे और वे मेवाड की पश्चिमी पर्वतीय सरहद की रक्षा करने वाले मेवाड के सामन्तो मे सर्वाधिक विश्वसनीय सरदार रहे। इससे घाणेराव ठाकुर का मेवाड के राजदरबार मे सदैव महत्वपूर्ण स्थान रहा। महाराणा अमरसिंह (दूसरे) द्वारा की गई कठोर कार्यवाही से निश्चय ही उनकी स्थिति को बडा आघात लगा किन्तु महाराणा सग्रामसिंह (दूसरे) के काल मे सम्बन्ध पुनः सामान्य एव पूर्ववत हो गये। किन्तु इसमे कोई सन्देह नही है कि घाणेराव ठिकाने की स्थिति मेवाड और मारवाड राज्यो की सरहद पर होने तथा मारवाड के महाराजा से घाणेराव

1 ठाकुर प्रतापसिंह (दूसरे) बडी आयु मे घाणेराव के स्वामी हुए थे और उन्होंने लगभग सात वर्षो तक ही शासन किया। यह सम्भव है कि पद्मसिंह से बडे उनके और पुत्र रहे हो, जो अपने पिता के जीवन काल मे चल बसे हो।

ठाकुर के निकट के संबंध होने से मेवाड राजदरबार में घाणेराव ठाकुर के विरोधी और ईर्षालु लोग उनके विरुद्ध भय-आशंका का वातावरण बनाते रहते थे।

जोधपुर राज्य के महाराजा की अधिकांश बहुमूल्य सम्पत्ति, जिसमें सोने, चांदी का सामान, सिंहासन, हाथी के गहने, कपडा की मंजूषें, बर्तन-बासन आदि थे अभी भी घाणेराव ठाकुर के पास सुरक्षित पडी हुई थी, जिसको मुगल आक्रमण के डर से पर्वतीय (मगरे) भाग के उनके जागीर गांव कडूजे में सुरक्षित रखा गया था।[1] महाराजा अजीतसिंह के जीवन काल में आवश्यकतानुसार सामान ले जाते और लाते रहे किन्तु अधिकांश बहुमूल्य सम्पत्ति वहां से नहीं हटाई गई क्योंकि तब तक अनवरत राजनैतिक उथल-पुथल के कारण जोधपुर उनके लिये पूर्णतः सुरक्षित नहीं हुआ था, यद्यपि वि० सं० 1765 (1708 ई०) में महाराजा अजीतसिंह का जोधपुर पर पूर्ण अधिकार हो गया था। वि० सं० 1780 (1723 ई०) में अपनी मृत्यु से कुछ महिनों पहिले महाराजा अजीतसिंह ने स्वर्ण राजसिंहासन एवं बहुमूल्य कपडों सहित कई वस्तुएं घाणेराव से मंगवाई।[2] फिर भी बहुत वस्तुएं वहां पडी रही। वि० सं० 1781 की सावन सुदि 8 (17 जुलाई 1 24 ई०) को महाराजा अजीतसिंह की उनके बड़े पुत्र बख्तसिंह द्वारा हत्या कर देने पर कुंवर अभयसिंह मारवाड के महाराजा बने। उस समय महाराजा अजीतसिंह के अन्य पुत्र आनन्दसिंह आत्म-रक्षा की दृष्टि से अपने छोटे भ्राता किशोरसिंह और रायसिंह को लेकर घाणेराव पहुंचे। रायपुर, लेरवा आदि के सरदार भी उनके साथ थे। आनन्दसिंह ने उस समय घाणेराव ठाकुर से राजपरिवार की उपरोक्त सुरक्षित सम्पत्ति की मांग की। झगडे और खूनखराबी से बचने के लिये ठाकुर पद्मसिंह ने उसमें से एक लाख रुपयों की वस्तुएं देकर उनको शान्त किया और घाणेराव से विदा किया। महाराजा अभयसिंह को आनन्दसिंह और उनके भाईयों के घाणेराव की ओर जाने की सूचना मिलने पर उन्होंने ठाकुर पद्मसिंह को लिखा कि वे उनको दिलासा देकर वहीं रखें और आगे नहीं जाने देवें, उनका दरबार

1 प्राचीन पत्रावली से ज्ञात होता है कि मेवाड के महाराणा की व्यवस्था के अन्तर्गत मारवाड राज्य की बहुमूल्य वस्तुएं घाणेराव ठाकुर की सुरक्षा में रखी गई थी। एक पत्र में महाराणा ने अधिक सुरक्षा की दृष्टि से इन वस्तुओं को कडूजा गांव ले जाने के लिये घाणेराव ठाकुर को लिखा था।

2 वि० सं० 1780, फाल्गुन सुदि 9 का ठाकुर पद्मसिंह के नाम महाराजा अजीतसिंह का पत्र (घाणेराव ठिकाने के प्राचीन दस्तावेज)।

के आदमियो के साथ वापस जोधपुर भिजावें, तथा दरबार की सम्पति का पूरा ध्यान रखें।[1] महाराणा संग्रामसिंह ने भी ठाकुर पद्मसिंह को एक पर्वाना भेजकर लिखा कि आनन्दसिंह को जोधपुर महाराजा की सम्पति नहीं लेने देवे तथा गोडवाड के हाकिम की सहायता लेकर उनको मेवाड की भूमि से बाहर निकाल देवें।[2] बाद मे महाराजा अभयसिंह ने राज्य की शेष सम्पति घाणेराव से लाने के लिये वि० स० 1782 (1725 ई०) मे ठाकुर पद्मसिंह के नाम पत्र लिखकर पोतदार रूपचन्द और भडारी वर्धमान को घाणेराव भेजा। महाराणा संग्रामसिंह का भी परवाना सामान देने हेतु पहुंचा।[3] ठाकुर पद्मसिंह ने सारी वस्तुए उनके साथ जोधपुर पहुचा दी।

इधर वि० स० 1776 (1719 ई०) मे मुगल बादशाह फर्रुखशियर की सैयद बन्धुओ द्वारा हत्या कर दी गई और उन्होंने रफीउद्दरजात और रफीउद्दौला को क्रमश: बादशाह बनाया, किन्तु वे थोडे थोडे समय म ही चल बसे। फिर उन्होंने मोहम्मद शाह को 18 सितम्बर, 1719 ई० को दिल्ली के तख्त पर बिठाया उसने सैयद बन्धुओं को मरवा डाला चूंकि जोधपुर महाराजा अजीतसिंह सैयद बन्धुओं के सहयोगी थे, बादशाह ने उनको भी मरवाने की तैयारी की। उस समय अन्य राठोड सरदार महाराजा की सहायता के लिये उनके पास पहुच गये। घाणेराव ठाकुर से महाराणा के मधुर सम्बध रहने से उस समय ठाकुर पद्मसिंह के चाचा शिवसिंह जमीयत लेकर महाराजा के दल मे सम्मिलित हुए।[4] महाराजा ने बादशाह के षडयन्त्र को विफल कर दिया और उसके विश्वसनीय सरदार नाहर

---

1 घाणेराव ठिकाने के प्राचीन दस्तावेज। रुपया लाख भरपाया की महाराजा आनन्दसिंहजी की रसीद। महाराजा अभयसिंह का ठाकुर पद्मसिंह को पत्र।

2 महाराणा संग्रामसिंह के वि० स० 1781, आसोज वदि 7 तथा आसोज सुदि 8 के परवाने।

3 वही। महाराजा अभयसिंह के वि० स० 1782 के मगसर सुदि 8 एव फागुन वदि 2 के पत्र।

4 जोधपुर महाराजा और घाणेराव ठाकुर के बीच अच्छे सम्बन्धो का पता इस बात से भी चलता है कि वि० स० 1779 मे महाराजा अजीतसिंह ने घाणेराव के व्यापारियों को मारवाड मे व्यापार करने की दृष्टि से विशेष सुविधाएँ प्रदान की थी। महाराजा अभयसिंह ने मगसर वदि 2 वि० स० 1782 को एक परवाना जारी कर उन सुविधाओ को कायम रखने का आदेश दिया।

खाँ को मारकर और उसका शिविर लूटकर जोधपुर लौट आये। यह घटना वि० स० 1779 (1722 ई०) में हुई।[1]

गोडवाड के अधिकांश निवासी मीणे हैं और वे प्रायः चोरी-डकैती आदि किया करते थे। वि० सं० 1779 (1722 ई०) में गोडवाड परगने में मीणों ने अधिक उपद्रव खड़ा किया। अभी ठाकुर पद्मसिंह अल्पायु के थे। मीणों के उपद्रव को शांत करने के लिये महाराणा संग्रामसिंह ने आमेट के रावत पृथ्वीसिंह चूण्डावत तथा पचोली हरिसिंह को नियुक्त कर गोडवाड भेजा और ठाकुर पद्मसिंह को परवाना भेजकर लिखा कि वे दोनों अधिकारियों से सहयोग करें, अपने पट्टे में शान्ति करावें और उनकी मदद के लिये आवश्यकतानुसार जमीयत भेजें।[2] ठाकुर पद्मसिंह ने अपनी जागीर के गांवों तथा गोडवाड में मीणों को दबाने की कार्यवाही में पूरी सहायता प्रदान की, जिससे थोड़े ही समय में गोडवाड में पूरी तरह शांति हो गई।

ज्येष्ठ कुंवर अभयसिंह के लिखने से कुंवर बख्तसिंह द्वारा अपने पिता महाराजा अजीतसिंह का वध करने तथा अभयसिंह के जोधपुर का महाराजा बनने के कारण मारवाड के बहुत से सरदार अप्रसन्न होकर उसके भाई आनन्दसिंह और रायसिंह से जा मिले थे। इनमें जैतावत, कूम्पावत और उदावत राठोड मुख्य थे। घाणेराव से माल लेकर जब आनन्दसिंह और उनके भाई मेवाड की सीमा (घाणेराव) को छोड़कर मारवाड में उत्पात करने लगे, उस समय किशोरसिंह तो अपने ननिहाल जैसलमेर चला गया और दोनों भाईयों ने अन्य सरदारों के साथ मिलकर सोजत, जैतारण आदि परगनों पर अधिकार कर लिया और मुल्क को लूटने लगे[3]। उनको

---

1 घाणेराव ठिकाने के प्राचीन दस्तावेज।
रेऊ - मारवाड राज्य का इतिहास, भाग 1, पृ० 324
ख्यातों में लिखा है कि महाराजा के कर्मचारी थानसिंह भण्डारी और राठोड शिवसिंह ने बातचीत के लिये नाहरखां के डेरे में गये और उसको और उसके भाई दिलावरखां को मार डाला।

2 घाणेराव ठिकाने के प्राचीन दस्तावेज। वि०स० 1779, भादवा सुदि 14 का महाराणा संग्रामसिंह का परवाना।

3 गौ ही ओझा–उदयपुर राज्य का इतिहास–भाग 2, पृ 617
G R. Parihar—Mawar and the Marathas, P. 25

दबाने के लिये महाराजा अभयसिंह के भाई राजाधिराज बख्तसिंह और भंडारी अनोपसिंह ने महाराणा संग्रामसिंह से सहायता के लिये निवेदन किया। इस पर महाराणा ने गोडवाड के प्रबन्ध के लिये साह टेकचन्द को नियुक्त किया और वि. स. 1784 (1727 ई) मे ठाकुर पद्मसिंह के नाम परवाना भिजवाकर आदेश दिया कि वे अपनी जमीयत लेकर साह टेकचन्द के पास पहुचे और राजाधिराज बख्तसिंह और भडारी अनोपसिंह को आवश्यकता होने पर सैनिक सहायता देवें।[1] ठाकुर पद्मसिंह जमीयत लेकर राजाधिराज बख्तसिंह की सेना में साथ शामिल हुए। इस अभियान मे मेवाड की सेना का नेतृत्व ठाकुर पद्मसिंह ने किया। उस समय मेवाड की सेना मे घाणेराव जमीयत के सैनिको के अलावा पाच सौ सवार अतिरिक्त थे।[2] मारवाड और मेवाड की सम्मिलित सेना के आक्रमण से आनन्दसिंह और उनके सहयोगियो ने मारवाड से निकल कर ईडर पर जाकर अधिकार कर लिया जो बादशाह ने महाराजा अभयसिंह को दिया था। अवसर का लाभ उठाकर महाराणा ने महाराजा अभयसिंह से समझौता करके स्वय ईडर पर अधिकार कर लिया।[3]

मुगल साम्राज्य के पतन और छिन्न भिन्न होने के साथ ही मराठा शक्ति का बढ़ता गया और वे मध्य और उत्तर भारत की ओर अपने पैर पसारने लगे थे। महाराणा सग्रामसिंह ने मराठों के बढते हुए उत्पात को देखकर पीपलिया के ठाकुर कनीराम बाघसिंह के पुत्र जयसिंह को छत्रपति साहू के पास अपने वकील के तौर पर भेजा था। इधर मराठे गुजरात और मालवा से आगे बढकर राजपूताना के नरेशो को अपनी ओर मिलाने का प्रयास करने लगे। वि स 1781 (1724 ई) मे मालवे से उत्तर की ओर मेवाड की सरहद की तरफ मराठो के बढाव का खतरा पैदा हुआ।[4] महाराणा ने मराठो के आसन्न खतरे के मुकाबले के लिये अपने सलाह-

1 घाणेराव ठिकाने के दस्त वेज। वि स 1784, आसोज बदि 3 का महाराणा सग्रामसिंह का परवाना। जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह ने महाराणा को मगसर वदि 8, वि स 1781 को पत्र भेजकर महाराजा अभयसिंह की सहायता के लिये लिखा था।

2 वही।

3 गौ. ही. ओझा-उदयपुर राज्य का इतिहास भाग 2, पृ 618

4 महाराणा सग्रामसिंह का महाराजा सवाई जयसिंह के नाम खरीता, वि स. 1781, पोस बदि 5।

आपसी ईर्ष्या एवं अपने अलग-अलग स्वार्थों के कारण इस सम्मेलन का कोई परिणाम नही निकला। जयपुर के महाराजा जयसिंह ने तो वि. स 1793 (1736 ई) म मराठा सरदार बाजीराव पेशवा से अलग सन्धि करके उसको मालवे की नायब सूबेदारी दे दी। इसके कुछ समय बाद ही पेशवा बाजीराव मेवाड आया और महाराणा से बतौर खिराज पाच लाख रुपय लेकर गया।[1]

वि स 1790 (1733 ई) मे सरहदी झगडे को लेकर जोधपुर और बीकानेर राज्यो के बीच लडाई हो गई। हुरडा सम्मेलन से उनके शत्रुतापूर्ण सबधों मे कोई फर्क नही आया। वि स 1796 (1739 ई) मे जोधपुर महाराजा अभयसिंह ने बीकानेर पर चढाई कर दी। जयपुर के महाराजा जयसिंह न हुरडा सम्मेलन के निर्णयों का हवाला देते हुए महाराजा अभयसिंह को कार्यवाही नहीं करने को लिखा। किन्तु जोधपुर महाराजा ने उनकी बात नहीं मानी। इस पर महाराजा जयसिंह ने अपनी सेना जोधपुर पर भेज दी। उन्होने महाराणा को भी सहायता भेजने के लिये लिखा। इधर महाराजा अभयसिंह ने घाणेराव ठाकुर के साथ अपने निकट सबधो को ध्यान मे रखते हुए ठाकुर पद्मसिंह को लिखा था कि वे अपनी जमीयत लेकर उनकी सेना मे आ मिले।[2] जोधपुर के महाराजा द्वारा महाराणा के एक सामन्त को इस तरह का सीधा परवाना भेजना उचित नही था। उससे मेवाड दरबार मे घाणराव ठाकुर के लिये सदेहास्पद स्थिति बन गई। उन दिनो महाराणा के कुँवर प्रतापसिंह के जोधपुर के स्वर्गीय महाराजा अजीतसिंह की राजकुमारी सौभाग्यकुँवरी के साथ विवाह की तैयारी चल रही थी। महाराजा अभयसिंह तो बीकानेर का घेरा डाले हुए थे और इधर जोधपुर म यह विवाह सम्पन्न हुआ, जिसमे घाणेराव ठाकुर पद्मसिंह शरीक हुए। जब विवाह हो रहा था, उस समय ही जयपुर की सेनाओ के जोधपुर की ओर बढने के समाचार मिले। कुँवर प्रतापसिंह ठाकुर पद्मसिंह को जोधपुर मे छोड कर उदयपुर आये और महाराणा को स्थिति से अवगत कराया। तब महाराणा जगतसिंह ने ठाकुर पद्मसिंह के नाम परवाना भेजकर आज्ञा दी कि महाराजा जयसिंह की सेना के आने पर बीच म पडकर दोनो राजाओ

---

1 वही।

2 घाणेराव ठिकाने के प्राचीन दस्तावेज। वि स 1796, भादवा वदि 11 का महाराजा अभयसिंह का ठाकुर पद्मसिंह के नाम परवाना। "श्री दरबार साथ घरमो छो। सारी वाता ताखर राखजो ने थणी जमीयत लेने सीताब हुजुर आवजो, हुकम छे।"

महाराणा अभयसिंह के साथ घाणेराव ठाकुर पद्मसिंह के इस प्रकार के निकट संबंध स्थापित हो जाने से महाराणा जगतसिंह के मन में संदेह उत्पन्न हो गया। वैसे भी महाराणा जगतसिंह संतुलित एवं धीर प्रवृत्ति के शासक नहीं थे और पूरी तरह सोचे विचारे बिना तत्काल कार्यवाही कर बैठते थे। उनको विचार हुआ कि ठाकुर पद्मसिंह महाराजा अभयसिंह से मिलकर कहीं गोडवाड़ को मारवाड में नहीं मिला दें। इसलिये उनको मार डालने की योजना बनाई गई वि.सं 1799 (1742 ई) में जब दशहरे की नौकरी पर घाणेराव ठाकुर महाराणा के पास उदयपुर आये तो घाणेराव पर अधिकार करने के लिये महाराणा ने सेना भेज दी और उदयपुर में घाणेराव की हवेली पर घेरा डाल दिया गया। किसी भी प्रकार की पारस्परिक बातचीत नहीं की गई। अतः ठाकुर अपने भाई कीर्तिसिंह सहित हवेली से बाहर आकर अपने 313 आदमियों सहित महाराणा की सेना से लडते हुए मारे गये। घाणेराव में महाराणा की सेना पहुंचने पर बाणमा तालाब के निकट घाणेराव और मेवाड की सैनिकों के बीच लडाई हुई, जिसमें घाणेराव कुंवर किशनसिंह भी मारे गये और घाणेराव पर महाराणा की सेना का अधिकार हो गया। उस समय घाणेराव में उपस्थित वहाँ के सरदार एवं ठिकाने के कर्मचारी कुंवर किशनसिंह के अल्पवयस्क बालक वीरमदेव तथा जनाने आदि को लेकर वहां से निकल गये, जिनको घणला के ठाकुर ने अपने यहां बड़े यत्नपूर्वक रखा।[1]

---

1 वही।

घाणेराव ठाकुर पद्मसिंह के उदयपुर में लडकर मारे जाने के संबंध में कतिपय प्राचीन डिंगल गीत मिलते हैं (देखें साहित्य संस्थान उदयपुर डिंगल गीत संग्रह 386, 387, 388) उनमें से एक गीत की पंक्तियां इस भांति हैं—

आसा पड धमक भंवालां नी इस,
राण जगौ कमधजी सर रूठ।
भार पडेत पदम नह भागौ,
दयाराम खग वागौ दूठ ॥ 1 ॥

ऊडै धोम अरावा आतस,
खल दल सबल लूंबिया खूर।
पातल तणा मोहर उदियापुर,
सुत आसट लियो, बहसूर ॥ 2 ॥

ठाकुर पद्मसिंह ने लगभग बाईस वर्षो तक घाणेराव ठिकाने का शासन किया। वे धीर, गम्भीर और बुद्धिमान व्यक्ति थे। उन्होने अपनी बुद्धिमानी और चतुराई से न केवल मेवाड दरबार मे अपनी प्रतिष्ठा की वृद्धि की अपितु उन्होंने जोधपुर महाराजा से बडा सम्मान प्राप्त किया। उन्होने जोधपुर और जयपुर के महाराजाओ के बीच सन्धि कराने म भी अपनी कुशलता का परिचय दिया।

वे एक अच्छे शासक थे। उन्होने अपने ठिकाने म मीणो आदि उत्पाती लोगो का दमन कर शान्ति और व्यवस्था कायम रखी, जिससे जागीर के प्रजाजनो की खुशहाली बनी रही। गुणी, ज्ञानी और विद्वान उनका प्रश्रय प्राप्त करते रहे। उल्लेख मिलता है कि वि स 1788 मे वाणारस नागराज ने ठाकुर पद्मसिंह के आदेश से मडन सूत्रधार कृत राजवल्लभ' की प्रतिलिपि तैयार की।[1] वि स 1790

आसल कमध लूण उजवाले,
छिसियो नही वदै चहु खूट।
राजा पदम पातरण रसिया,
वर अपछर वसिया वैकूठ ॥ 3 ॥

वर्तमान साटोला रावत उदयसिंह के कथनानुसार इस घटना के सबध मे यह बात चली आती है कि जब कुँवर प्रतापसिंह को बूदी के महाराव बुधसिंह की कन्या के साथ शादी के लिये महाराणा जगतसिंह ने बारात भेजी उस समय घाणेराव ठाकुर पद्मसिंह और साटोला रावत किशनावत रोडसिंह (जिनको इन महाराणा न साटोला की जागीर प्रदान की थी) को बारात के साथ फौज मुसाहिब बनाकर भेजा था और यह हिदायत दी थी कि बूदी से लौटते समय वे कुँवर की शादी लावा (सरदारगढ) ठाकुर डोडिया सरदारसिंह (जिनको इन महाराणा ने लावा की जागीर प्रदान की थी) की कन्या क साथ भी शादी कराके लावें किन्तु घाणेराव ठाकुर और साटोला रावत दोनो को दूसरा सबध पसन्द नही होने के कारण बूदी विवाह सम्पन्न कराके सीधे लौट आये। इससे उनको महाराणा का कोप भाजन बनना पडा। साटोला रावत रोडसिंह ने अपने प्राण-बचाने के लिये बडी पाल की ओर से भागकर बूदी जाकर शरण ली।

1 रा प्रा वि प्र उदयपुर, ग्रन्थाक 1562। "इति श्री वास्तुशास्त्रे राज वल्लभ मण्डनेन विरचित । सवत् 1788 वर्षे कातिक वदि 13 रवौ ' लिखित वाणारस नगा ॥ श्री घाणापुर मध्ये ॥ महाराजाधिराज महाराज श्री 5 श्री पद्मसिघजी लिखावत ॥ शुभ भवन

मे नागराज के शिष्य रूपजी ने घाणेराव मे 'वास्तुसार' की टीका सहित तथा भुवन दीपक की बालावबोध सहित प्रतिलिपिया तैयार की थी।

ठाकुर पद्मसिंह के चार पुत्र, किशनसिंह, विशनसिंह, नाथसिंह और खुमाणसिंह हुए।[1]



---

1 घाणेराव ठिकाने के प्राचीन दस्तावेज।

ठाकुर वीरमदेव

ठाकुर पद्मसिंह के ज्येष्ठ कुंवर किशनसिंह मेवाड के सैनिकों द्वारा घाणेराव पर कब्जा करते समय मारे गये थे। उस समय किशनसिंह के पुत्र वीरमदेव ८ मास के थे। घाणेराव का राजपरिवार वहा से निकल कर घणला चला गया, जहा बालक वीरमदेव का पालन-पोषण होने लगा। इधर घाणेराव पर हुई कार्यवाही के कुछ समय बाद घाणेराव परिवार के शुभचिंतकों द्वारा महाराणा जगतसिंह के सम्मुख ठाकुर पद्मसिंह के सबंध मे सही बातें प्रस्तुत की गई, जिन पर महाराणा ने विचार किया और ठाकुर पद्मसिंह का निरपराध होना प्रमाणित हुआ। इस पर महाराणा ने घाणेराव ठिकाना पुन ठाकुर पद्मसिंह के उत्तराधिकारी वीरमदेव को प्रदान करने का निर्णय लेकर वि स 1800, आसोज सुदि 5 (12 सितम्बर 1743 ई) को परवाना जारी किया।[1] ठाकुर वीरमदेव को घाणेराव पहुंच कर पट्टे के अधिकार हासिल करने के लिये लिखा गया। चूंकि वीरमदेव बालक थे इसलिये चार प्रतिष्ठित सरदारो सीसोद के अर्जुनसिंह केशरीसिंहोत, कुंवर लालसिंह राघोदेओत, कुंवर साईदास जैसिंहोत, कुंवरनाथ शम्भुसिंहोत को उनको लिवाने के लिये परवाना देकर भेजा।[2] इसके साथ ही घाणेराव ठिकाने में पहिले की भांति व्यवस्था करने और ठाकुर की बाल्यावस्था में ठिकाने में सुप्रबन्ध की दृष्टि से कार्यवाही की गई। मेवाड दरबार से अलग

1 घाणेराव ठिकाने के प्राचीन दस्तावेज। 'घाणेरा रो पट्टो थारे मया हुआ है सो जमा खातर राखे हजूर आवजो सो थारी मेरमरजाद सदामद पहेली रही है जणी प्रमाणे हुकम है सो रहेगी। प्रधानगी शाह रूपो चेनावत। संवत 1800 वर्षे आसोज सुदि 5।

2 वही।

अलग परवाने जारी कर[1] घाणेराव ठिकाने की जब्ती के समय जिन लोगों को ठिकाने के गांव आदि गये थे, उनको ठाकुर वीरमदेव को वापस लौटाने हेतु[2] तथा घाणेराव ठाकुर के नजदीकी रिश्तेदारों और ठिकाने के राजपूतों, कामदारों आदि को सदा की भांति ठाकुर वीरमदेव की चाकरी देते रहने, राज्याधिकार के समय में घाणेराव ठिकाने की कोई वस्तुएं गई हों उनकी सूची बनाने और घाणेराव की उठन्तरी समय राज्य में जो रकम ली गई उसको वापस दिये जाने आदि के आदेश किये गये। केलवाड़े के हाकिम लक्ष्मीपाल को लिखा गया कि पहिले की भांति घाणेराव की नाल (देसूरी की नाल) की चौकी का अधिकार घाणेराव ठाकुर को वापस लौटाया जाय।[3] कुछ महिनों बाद ठाकुर के बाल्यकाल में ठिकाने के सुप्रबन्ध के लिये राठोड छत्रसिंह भगवतदासोत को राज्य की ओर से अधिकारी नियुक्त किया गया।[4] घाणेराव ठिकाने की जो जमीन, बीड आदि खालसे के प्रबन्ध में ले ली गई थी उनको वापस लौटा दिया गया। राज्य की ओर से घाणेराव के खडलाकड की राशि पहिले की भांति कायम रखी गई।[5]

वि स 1800 (1743 ई) में जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह का देहान्त हो गया और उनके ज्येष्ठ कुंवर ईश्वरीसिंह जयपुर की गद्दी पर बैठे। इस बात से महाराणा जगतसिंह अप्रसन्न हुए क्योंकि वि स 1765 (1708 ई)

---

1 वही।

2 वही। राठोड पट्टाईसिंह को आदेश दिया गया कि घाणेराव पट्टे के तीन गांव राणी, गुआडो और देवली, जो उसको दिये गये थे, उन पर ठाकुर वीरमदेव का अमल करा देवे।

3 वही। वि स 1800, मगसर सुदि 15 का परवाना।

4 वही। वि स 1801, श्रावण सुदि 12 का महाराणा जगतसिंह का राठो[ड] छत्रसिंह सावलदासोत के नाम का परवाना—"राठोड वीरमदेव की सनसीधो बालक है जतर थे दरबार री साधन तथा ईणा रा भाई-बेटा कामदारा है दस्तु[र] माफक चतावा रो जतन राखजो ने अणा री अरज होय सो हजूर मालम कीज[ो] प्रधानगी व्यास रगनाथ।"

5 वही। 'अप्र सवत 1801 वर्ष रा खडलावड रा रुपीया भडार भरावजो भात दीना प्रत रुपयो 1) एक दीजो। स 1801 वर्षे श्रावण वदि 13

1804, आसाढ वदि 8 का घाणेराव ठाकुर वीरमदेव को प्राप्त हुआ।[1] वीरमदेव बालक होने के कारण इन चढ़ाइयो मे शरीक नही हुए किन्तु घाणेराव की जमीयत मेवाड की सेना मे सम्मिलित हुई। उधर वि स. 1807 (1758 ई) मे होल्कर द्वारा जयपुर पर आक्रमण करने पर ईश्वरीसिंह ने आत्महत्या करली, तो होल्कर न माधवसिंह को जयपुर की गद्दी पर बिठा दिया। इस उपकार के बदल माधवसिंह ने होल्कर को न केवल टोंक के चार परगने एव बहुत सा धन दिया अपितु मेवाड का रामपुरे का परगना जो महाराणा ने उनको परवरिश के लिये दे रखा था होल्कर को दे दिया।[2]

ठाकुर वीरमदेव की बाल्यावस्था में राज्य की ओर से ठिकाने का प्रबन्ध अच्छा रहा और उनके लिये राज्य की ओर से राज्योचित एव क्षत्रियोचित शिक्षा का प्रबन्ध किया गया। इससे ठाकुर वीरमदेव शीघ्र ही थोडी आयु मे ही अपने ठिकाने के प्रबन्ध में सचालन के योग्य हो गये।

वि स 1808, आषाढ वदि 7 (5 जून,1751 ई) को महाराणा जगतसिंह (दूसरे) का देहान्त हो गया। उनके बडे कुवर प्रतापसिंह मेवाड के महाराणा बने।[3] महाराणा प्रतापसिंह (दूसरे की प्रारम्भ से ही घाणेराव ठिकाने पर कृपा-दृष्टि रही। महाराणा प्रतापसिंह न गद्दी पर बैठने के बाद मगसर महा मे ठाकुर वीरमदेव को उदयपुर बुलाया। घाणेराव की ख्यात मे उल्लेख है कि इस अवसर पर महाराणा ठाकुर वीरमदेव की अगवानी के लिये भुवाना गाव तक आये। मगसर वदि 6, वि 1808 (28 अक्टूबर, 1751 ई) को महाराणा ने घाणेराव की हवेली मे जाकर मातमपुर्सी का दस्तूर पूरा किया।[4]

---

1 घाणेराव ठिकाने के प्राचीन दस्तावेज। बाबो संभुसीघ पचोनी गुलाब फौज ले दीदा हुआ है सो पटा प्रमाणे साथ सामान ले सीताब साभल व्हे जो।'

2 ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ० 638

3 वही, पृ० 641। पिता-पुत्र मे वैमनस्य के कारण कुवर प्रतापसिंह उस समय कैद म थे। सलूम्बर के रावत जैतसिंह ने उनको कैदखाने से निकाल कर गद्दी पर बिठाया।

4 घाणेराव की ख्यात। मेवाड के बडी श्रेणी के जागीरदारो की मृत्यु पर महाराणा उदयपुर स्थित उनकी हवेली मे जाकर मातमपुर्सी का दस्तूर सम्पन्न करते थे। ठाकुर पदमसिंह के मारे जाने के बाद स्वर्गीय महाराणा द्वारा यह दस्तूर पूरा नही किया गया था।

वि सं. 1799 (1742 ई.) मे घाणेराव पर राज्य का अधिकार रहने के समय ठिकाने के प्रवन्ध मे जो परिवर्तन किये गये, उससे ठिकाने को बडी क्षति हुई। उस समय राज्य कर्मचारियो एव ठिकाने के सरदारो आदि न बडी मनमानी से काम लिया। ठिकाने की आय कम हो गई और ऋण लेकर ठिकाने का कार्य चलाया गया। घाणेराव से राज्य का अधिकार हटाने के लिये राज्य मे जो नजराना आदि जमा कराना पडा उससे ठिकाना पूर्ण रूप से ऋण ग्रस्त हो गया। उधर ठाकुर वीरमदेव को ठिकाना वापस दिये जाने के बाद भी ठाकुर के बाल्यकाल के कारण सर्वत्र मनमानी चलती रही। किसानो से हासिल प्राप्त करने, ठिकाने से अलग किये गये गावो पर वापस अधिकार प्राप्त करने, दाण आदि की मार्फो को लागू करने आदि बातो मे कठिनाई हुई। राज्य के आदेशो का पूरी तरह पालन नही हुआ। ठिकाने के ऋण के चुकारे मे भी कठिनाई पैदा हुई। ऋणदाता प्रति वर्ष ठिकाने मे आकर ठिकाने की आय का अधिकाश भाग ऋण के चुकारे मे ले लेते थे और ठिकाने का व्यय चलान मे भारी कठिनाई होती थी। ठिकाने की इन कठिनाइयो को देखकर महाराणा ने ठिकाने के ऋणदाताओ के नाम परवाना जारी करके व्यवस्था दी कि ठिकाने की आय को देखकर ऋण वसूल करें और ठाकुर को तग नही करें।[1] गाव देवली तथा नकरता के समस्त पटेलो को आदेश दिया गया कि वे कायदे मुताबिक हासिल ठाकुर वीरमदेव को देवें।[2] पहिले की भाति 800 साडो की चराई देबारियो द्वारा ठिकाने मे जमा कराने तथा देवारियो द्वारा ठिकाने के लिये ऊट देने के आदेश जारी किये गये। गोडवाड, बदनोर, माडलगढ और नीमच के दाणियो को घाणेराव के व्यापारियो से पहिले की भाति दाण वसूल नही करने के आदेश भेजे गये।[3] ठिकाने की ओर से राज्य को प्रतिवर्ष देय दसूद पेटे गाव करेली, डायलाणो और वालोलाई खालसे मे रखे गये।[4]

वि. स. 1809 (1752 ई) मे मेरवाडे के मेरो के उपद्रव हुए, जिनको दबाने के लिये महाराणा द्वारा घाणेराव ठाकुर का मगसर बदि 14 को परवाना भेजा गया।[5] इस पर घाणेराव की ओर से उनको दबाने के लिये जमीयत भेजी गई।

---

1 घाणेराव ठिकाने न प्राचीन दस्तावेज। महाराणा का समस्त बोहरो के नाम परवाना वि स 1809, आषाढ सुदी 9।

2 वही। गाव देवली के पटेलो के नाम परवाना, वि. स. 1808 माह सुदी 2

3 वही। 4 वही। 5 वही।

राज्यारोहण के पश्चात् महाराणा अरिसिंह एकलिंगजी के दर्शन हेतु गये। वहां से लौटते समय चीरवे के तंग घाटे में छड़ीदारों ने महाराणा के लिये रास्ता बनाने हेतु आगे चल रहे सरदारों के घोड़ों की पीठ पर छड़ियां मारी जिससे सरदार बड़े अपमानित हुए। उन्होंने सिन्ध और गुजरात से मुसलमान सैनिकों को बुलाकर नियत किया, जिससे राजपूत विरोधी हो गये। उन्होंने अपने काका बागोर के महाराजा नाथसिंह को भींडर के रावत सारंगसिंह द्वारा धोखे से मरवा डाला तथा सलूम्बर के रावत जोधसिंह को विषयुक्त पान का बीड़ा खिला-कर मार डाला। कुछ समय बाद महाराणा ने षड्यन्त्र करके देलवाड़े के झाला राघवदेव को भी मरवा डाला। इन सब कार्यों से मेवाड़ के अधिकांश सरदार सशंकित एवं भयभीत हो गये और महाराणा को राज्यच्युत करके और उनकी जगह बालक रत्नसिंह[1] को मेवाड़ की गद्दी पर बिठाने का उपक्रम करने लगे। रावत जसवन्तसिंह ने 1764 ई० के प्रारम्भ में रत्नसिंह को कुम्भलगढ़ में ले जाकर मेवाड़ का महाराणा घोषित कर दिया। सलूम्बर, बिजोलिया, बदनोर, आमेट, पाणेराव और कुराबड़ के सरदारों को छोड़ कर बहुत से उमराव प्रत्यक्ष रूप से रत्नसिंह के पक्षपाती हो गये जिनमें सादड़ी, गोगुन्दा, देलवाड़ा, बेगूं, कोठारिया, कानोड़, देवगढ़ आदि ठिकाने प्रमुख रूप से शामिल थे। शेष सरदार तटस्थ हो गये। इससे महाराणा घबरा गये और उन्होंने सरदारों से मेल प्रारम्भ किया। सामन्तों में भी स्वार्थपरता का बोलबाला था। जो उनको अधिक धन देता थे उसका साथ देने को तत्पर थे। बनेड़े के राजा रायसिंह और शाहपुरा के राजा उम्मेदसिंह को महाराणा ने अपनी ओर मिला लिया।[2]

मेवाड़ के इस गृह-कलह में ठाकुर वीरमदेव महाराणा अरिसिंह के पक्ष में रहे। वे अरिसिंह को गद्दी पर बिठाने वालों में से थे। किन्तु ठाकुर वीरमदेव भी महाराणा की स्वेच्छाचारिता के खिलाफ हुए। पाणेराव पर भी राज्य की ओर से दस्तक (धौंस) जारी हुई, इससे ठाकुर को महाराणा की अप्रसन्नता का भय हुआ और वे मेवाड़ का परित्याग करने का विचार करने लगे। महाराणा को जब यह समाचार मिला तो उन्होंने वि. सं. 1818 भाद्रपद वदि 14 (29

1 झाली रानी से उत्पन्न महाराणा राजसिंह (दूसरे) का पुत्र, जो उनकी मृत्यु के बाद पैदा हुआ। यह रानी गोगुन्दा के राज जसवन्तसिंह झाला की बहिन थी। रत्नसिंह को उसके जन्म के बाद जसवन्तसिंह गोगुन्दा ले गया और गोपनीय रूप से उसका पालन पोषण करता रहा।

2 ओझा– उदयपुर राज्य इतिहास, भाग 2, पृ. 650

अगस्त, 1761 ई) को ठाकुर वीरमदेव के नाम तसल्ली के लिये खास रुक्का भेजा[1] और एक माह बाद स्वय अपने प्रधान शाह सदाराम देपुरा को खास रुक्का देकर घाणेराव भेजा जिसने गढ़बोर के चारभुजा भगवान की सौगन्ध खाकर महाराणा अरिसिंह की ओर से ठाकुर वीरमदेव को विश्वास दिलाया। उसी वर्ष कार्तिक माह मे महाराणा ने पुन पचोली अनोपराम को ठाकुर वीरमदेव के पास बातचीत के लिये भेजा।[2]

वि स, 1818 (1761 ई) मे ही महाराणा ने मेवाड से सटे हुए सिरोही राज्य के इलाके मे उपद्रवो को शान्त करने के लिये गोडवाड हाकिम नन्दलाल देपुरा की अध्यक्षता म सिरोही पर सेना भेजी।[3]

महाराणा के आदेशानुसार ठाकुर वीरमदेव घाणेराव से जमीयत लेकर सेना मे सम्मिलित हुए। मेवाड की सेना ने पुमलिया गाव लूटा और दो माह तक महाराणा की सेना वहा रही। सिरोही क राव की ओर स समझौते की बातचीत आरम्भ की गई। इतने मे ही महाराणा ने नदलाल देपुरा का आगरा जाने का

1 घाणेराव ठिकाने क प्राचीन दस्तावेज। महाराणा का रुक्का—'अप्र च आप हे कणी जूठी साची कही सो आपरा मन म अणवीसवास आप जाणो की आप मारा आडी रो काईत कायद जाणोगा नही। आप वचे ने मा वचे श्री एकलिंगजी है। दूजा समाचार साह सदारामजी तथा धाभाई रुपराम नागद थी जाणोगा। समत १८१८ वर्षे भादवा सुद १४।

2 वही।

3 घाणेराव ठिकाने की प्राचीन ख्यात। ख्यात में यह स्पष्ट उल्लेख नही है कि महाराणा को सिरोही में सेना क्यो भेजनी पडी ? उस समय सिरोही का शासक राव पृथ्वीराज था। महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के काल में जब सिरोही राज्य के लिये गृह-कलह हुआ उस समय महाराणा की सहायता से छत्रसाल अपने भाई राव सुरतानसिंह को हटाकर गद्दी पर बैठा। इस कार्यवाही से सिरोही के दो गाव पालडी और कोटडा उदयपुर के अधिकार में रहे। सिरोही के उत्तरी भाग में प्राय देवडा राजपूत और मीणे चोरी, डकैती और उपद्रव आदि किया करते थे और मेवाड के इलाके में भी यह कार्यवाही करते रहते थे। सिरोही के राव निर्बल और अयोग्य रहे। यह समव है कि इन उपद्रवो से मेवाड को होने वाली हानि के कारण महाराणा को यह सैनिक कार्यवाही करनी पड़ी

हुक्म दिया और ठाकुर वीरमदेव को भी उनके साथ जाने के लिये वि स. 1818, माह वदि 4 (14 जनवरी, 1762 ई) को खास रुक्का भिजवाया, परन्तु उन्होंने जब तक सिरोही का मामला तय न हो जाय तब तक वहा से विदा न होने के लिये महाराणा की सेवा मे अर्जी भेज दी।[1]

आगामी वर्ष वि स 1819 (1762 ई) मे मराठा आक्रमण के मुकाबले के लिये तैयारी करनी पड़ी। मराठे सैनिक लूटमार करते हुए मेवाड के भीतर बहुत दूर तक चले आये और उदयपुर की ओर बढ़ने के समाचार मिले। इस विषम स्थिति मे राजधानी की रक्षा के लिए महाराणा को अत्यन्त विश्वसनीय सैनिको की आवश्यकता पड़ी। इसके लिये महाराणा ने गोडवाड तथा घाणेराव की जमीयतो पर भरोसा करना उचित समझा। महाराणा ने घाणेराव ठाकुर वीरमदेव को खास रुक्का भेजकर विशनसिंह, सूरजमल तथा अन्य सरदारो को लेकर ससैन्य फौरन उदयपुर पहुचने के लिये आदेश किया। ठाकुर वीरमदेव तत्काल अपने सरदारो को साथ लेकर उदयपुर पहुच गये। वि स 1821 (1764 ई) मे मेवाड पर चढ़ी हुई खिराज वसूल करने के लिए महाराणा ने पचोली गुलाबचन्द और कानोड के रावत जगतसिंह को सेना देकर भेजा। किन्तु होल्कर ऊठाला तक आ पहुचा। होल्कर को आगे बढ़ने से रोकने के लिये महाराणा ने अपने सरदारो को अपनी अपनी जमीयत लेकर फौरन उदयपुर आने के लिये लिखा। घाणेराव ठाकुर को महाराणा ने वि स 1820 वैसाख सुदि 5 (6 मई, 1764 ई) को खास रुक्का भिजवा कर लिखा कि दक्षिणियो (मराठो) के व्यवहार मे फर्क आ गया है, आप जमीयत लेकर पहुचने मे ढील नही करे। ठाकुर वीरमदेव तुरत उदयपुर पहुचे।[2] इसके पूर्व ही इक्कावन लाख रुपय देने की बात स्थिर होकर समझौता होने से होल्कर मेवाड़ से चल दिया।

महाराणा ने इधर मराठो को मेवाड के बाहर भेजा ही था, उधर मेवाड में कई भागो मे महाराणा के विरोधी और रत्नसिंह के पक्ष वाले मेवाड़ के सरदारो के उत्पात होने लगे। महाराणा ने वि स 1821, आसोज वदि 15 (15 सितम्बर 1764 ई) को ठाकुर वीरमदेव को परवाना भेजकर लिखा कि देश म काम पडने पर आपकी जरूरत पड सकती है, उस समय फौजदार को जमीयत सहित भिजावें।

1 वही।
2. वही।
3. वही।

वि स 1821, माघ वदि 9 (15 जनवरी, 1765 ई) को महाराणा ने रुक्का भेजकर ठाकुर वीरमदेव को सूचित किया कि रावत जसवन्तसिंह ने उपद्रव उठा रखा है और जयपुर के महाराजा की फौज भी मदद के लिए बुलाई है। इसलिये विसनसिंह, सूरजमल, सोलकी वीरचद आदि गोडवाड के सरदारो को साथ लेकर जमीयत सहित गोडवाड हाकिम खुशाल देपुरा के साथ बाली म आकर एकत्रित हो। उस समय गोडवाड म नागौर के महाराजा नाथसिंह, जिसको महाराणा ने मरवा डाला था, के पुत्र भगवतसिंह और राठोड शुभसिंह आदि राज्य विरोधी कार्यवाहियो म सक्रिय थे। महाराणा ने उनको गोडवाड से निकालने के लिये घाणेराव ठाकुर को लिखा।[1]

मेवाड के बडे ठिकाने के ठाकुरों को शरणे का अधिकार कदीम से चला आता था। भयकर से भयकर अपराधी भी यदि उनकी शरण में चला जाता तो वह अभय पा जाता था। इस शरण का पालन न केवल जागीर के गावो में अपितु राजधानी में उनकी हवेली में भी होता था। वि स 1820 श्रावण वदि 11 (5 अगस्त, 1763 ई) को महाराणा ने राजधानी उदयपुर में घाणेराव की हवेली की सीमा नियत कर उसके भीतर अपराधी के शरण लेने पर राज्य द्वारा नही पकडा जाने का तथा कवर देवा श्रीचद के मकानात ठाकुर वीरमदेव को प्रदान करने का परवाना बख्शा।[2]

वि स 1820 (1763 ई) तक महाराणा के विरोधी सरदारो की कार्यवाही मेवाड की खालसा भूमि में तथा महाराणा पक्षीय ठिकानो में उत्पात मचाने तथा रत्नसिंह का प्रभाव क्षेत्र अधिकाधिक विस्तृत करने तक रही। किन्तु इस बीच महाराणा ने अपनी सेना में सिंधी एव अरबी लोगो को भर्ती करके तथा बनेडा और शाहपुरा के राजाओ को अपनी ओर मिला कर और राजराणा जालिमसिंह[3] की सेवाएँ प्राप्त कर अपनी स्थिति मजबूत करली। उन्होने मेवाड के

1 वही।

2 घाणेराव के प्राचीन दस्तावेज।

3 झाला जालिमसिंह बडा बुद्धिमान और चतुर राजनीतिज्ञ था। कोटा महाराव के साथ अनबन हो जाने के कारण वह उदयपुर चला आया था। महाराणा ने उसको चीतावेडे की जागीर और राजराणा का खिताब प्रदान किया। जालिमसिंह ही झालावाड राज्य के राजराणाओं का मूल पुरुष था।

कई भागो से रत्नसिंह का दखल जो देवारी के बाहर तक पहुच गया था, उठा दिया महाराणा ने विरोधी सरदारो से मेल करने का प्रयास किया, किन्तु उनको महाराणा का विश्वास नही होने से सफलता नही मिली। इधर विरोधी सरदारो ने मराठा सरदार महादजी सिंधिया से सम्पर्क कर उससे रत्नसिंह के लिये सहायता का वचन ले लिया। इससे मेवाड मे गृह-कलह ने खतरनाक स्वरूप ग्रहण कर लिया। महाराणा को सर्वाधिक चिन्ता यह हुई कि रत्नसिंह को किस भांति कुम्भलगढ जैसे सुदृढ एव सुरक्षित स्थान से बेदखल करे और उसको गोडवाड मे अपना अधिकार जमाने से रोके। चूंकि गोडवाड का इलाका कुम्भलगढ से सटा हुआ मेवाड की सुरक्षा की दृष्टि से सदैव ही अत्यन्त सामरिक महत्व का रहा। इस दृष्टि से घाणेराव ठाकुर जैसे प्रथम श्रेणी के उमराव के महाराणा अरिसिंह के पक्ष मे रहने से निश्चय ही महाराणा को बडा सहारा और बल मिला। यदि घाणेराव ठाकुर महाराणा के विरोध म चले जाते तो यह सामरिक महत्व का बडा सम्पन्न इलाका रत्नसिंह को मिल जाता और सम्भवत मेवाड का आगे का इतिहास ही दूसरा होता वि स 1821 (1765 ई) तक मराठो के दखल व खतरे से मेवाड के गृह-कलह की स्थिति विषम हो गई। महाराणा ने आने वाले खतरे के सबंध मे विचार विमर्श के लिये अपने सरदारो को उदयपुर आमन्त्रित किया। वि स 1821 चैत्र बदि 7 (9 मार्च, 1765 ई) का महाराणा का खास रुक्का ठाकुर वीरमदेव को मिलने पर वे उदयपुर रवाना हुए।[1] महाराणा ने रत्नसिंह और मराठो के सयुक्त खतरे से निपटने के लिये सरदारो के साथ रणनीति पर विचार किया। ठाकुर वीरमदेव को प्रधान रूप स गोडवाड के अन्य सरदारो को साथ लेकर तथा वहा के हाकिम के साथ मिलकर गोड़वाड की सुरक्षा का दायित्व दिया गया। महाराणा ने उसी वर्ष ठाकुर वीरमदेव को रुक्का भेजकर लिखा कि देपुरा खुशाल को गोडवाड का कामदार बना कर आपके भरोसे भेजा है। आपका बडा भरोसा है और आपके सिवाय मेरे और कोई बात नही। गोडवाड के सारे सरदार मिलकर अच्छी व्यवस्था करेंगे और वहा के बखेडे का पूरा जाब्ता रखेंगे।[2] श्रावण सुदि 10 (27 जुलाई 1765 ई.) को खास रुक्का भेजकर महाराणा ने ठाकुर वीरमदेव को पुन बातचीत के लिये तत्काल उदयपुर बुलाया। सम्भवत ठाकुर वीरमदेव को उदयपुर पहुचने मे विलम्ब हुआ और अन्य ठिकानो के सरदार भी वहा नही पहुचे, इसलिये भादवा बदि 1 को पुन महाराणा न खास रुक्का भेजकर उनको उदयपुर बुलाया।[3]

---

1 घाणेराव ठिकान के प्राचीन दस्तावेज।

2 वही। 3 वही।

इधर वि स 1823 (1766 ई.) के अन्त म जोधपुर महाराजा विजयसिंह श्री नाथजी के दर्शनार्थ मेवाड की ओर रवाना हुए।[1] मेवाड के गृह-कलह की गम्भीर स्थिति और मेवाड के सम्भावित विभाजन एव विद्रोह को देखते हुए महाराजा ने इस कलह मे भाग लेकर गोडवाड का बहुमूल्य इलाका हस्तगत करने का इरादा किया, जिस पर मारवाड के शासको की सदैव से नजर रही। वि स. 1824 चैत्र वदि 11 (14 मार्च, 1767 ई) को महाराणा ने महाराजा विजयसिंह स वार्ता करने हेतु घाणेराव ठाकुर को खास रुक्का भेज कर उदयपुर बुलाया और महाराजा स वार्ता चलाई। महाराजा ने आवश्यकता पडने पर महाराणा को सहायता देने का वचन दिया। उसके बाद लौटते हुए महाराजा विजयसिंह घाणेराव ठाकुर वीरमदेव के मेहमान हुए। उस समय महाराजा ने ठाकुर वीरमदेव के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा कि यदि गोडवाड उनको दिया जाय तो वे रत्नसिंह को मेवाड से निकालने मे महाराणा की मदद कर सकते हैं।[2] किन्तु अन्य सरदारो और महाराणा ने यह प्रस्ताव मजूर नहीं किया। इससे विजयसिंह रत्नसिंह द्वारा पन्द्रह लाख रुपये देने का वादा करने पर उसको मदद करने लगे।[3] इधर गोडवाड की बात को लेकर कई लोग घाणेराव ठाकुर के विरोधी हो गये और उन्होंने वि स 1824 (1767 ई) म ठाकुर वीरमदेव को मारने का षडयन्त्र किया, किन्तु वे बाल-बाल बच गये। जब महाराणा को इस बात का पता चला तो, उन्होने वि स 1824, कार्तिक वदि 7 (14 अक्टूबर, 1767 ई) को खास रुक्का भेज कर प्रसन्नता जाहिर की और ईश्वर को धन्यवाद दिया। जोधपुर महाराजा ने भी कार्तिक सुदि 14 [5 नवम्बर] को ठाकुर वीरमदेव को पत्र लिख कर उनके जीवित बच जाने पर प्रसन्नता व्यक्त की।[4]

इस बीच महाराणा अरिसिंह ने भी रत्नसिंह के विरुद्ध मराठो की सहायता प्राप्त करने की दृष्टि से राजराणा आसिमसिंह और मेहता अगरचन्द को पेशवा के

---

1 रेऊ जोधपुर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० 382

2 घाणेराव ठिकाने के प्राचीन दस्तावेज।

3 Dr K S Gupta Mewar and the maratha Relations P 89
सभव है गोडवाड के सबध म महाराजा विजयसिंह ने रत्नसिंह से कोई आश्वासन प्राप्त किया हो।

4 घाणेराव ठाकुर के प्राचीन दस्तावेज।

पास भेजा। इन्होंने बीस लाख रुपये देने का वादा करके रत्नसिंह को मेवाड़ से निकलवाने का पत्र पेशवा से प्राप्त कर लिया [25 सितम्बर, 1768 ई] इधर महाराणा ने अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिये जयपुर के महाराजा माधोसिंह से भी मैत्री-संधि कर ली [26 सितम्बर, 1767 ई.]। महाराणा के इन प्रयासो से रत्नसिंह के सहयोगी घबरा उठे। वे रत्नसिंह को लेकर महादजी सिंधिया के पास उज्जैन पहुंचे। रत्नसिंह को महाराणा बनाये जाने पर सिंधिया को पचास लाख रुपये दिये जाने की शर्त पर समझौता हो गया [22 नवम्बर, 1768 ई] और वह उदयपुर पर चढ़ाई की तैयारी करने लगा। महाराणा ने देलवाड़े के राजा राघवदेव,[1] शाहपुरा के राजा उम्मेदसिंह और सलूम्बर के रावत पहाड़सिंह को सिंधिया को अपने पक्ष में करने हेतु भेजा, किंतु असफल रहे। इससे युद्ध निश्चित हो गया। महाराणा ने अपने सामन्तों को जमीयतें लेकर उदयपुर पहुंचने के आदेश भिजवाये। इस समय ठाकुर विरमदेव को रत्नसिंह की ओर से भी मेवाड़ के महाराणा के तौर पर एक परवाना अपनी जमीयत लेकर उसके पास पहुंचने का प्राप्त हुआ [2]

महाराणा अरिसिंह ने अपनी सेना एकत्रित कर उज्जैन की तरफ रवाना की। महाराणा की सेना मे अगरचन्द मेहता, राजराणा जालिमसिंह, सलूम्बर का रावत पहाड़सिंह शाहपुरा का राजा उम्मेदसिंह, बनेड़ा का राजा रायसिंह, माणेराव ठाकुर वीरमदेव, बदनोर ठाकुर अक्षयसिंह, आमेट रावत फतहसिंह, कानोड़ी का राव शुभकरण और भैंसरोड़ का रावत मानसिंह आदि सरदार शामिल थे। महाराणा की सेना मे राघोराम पागे और दौलामिया के नेतृत्व में आठ हजार मराठा सैनिक भी शरीक थे[3] पौष सुदि ६, वि. स. 1825 (16 जनवरी, 769) को उज्जैन के निकट शिप्रा नदी के किनारे महाराणा

---

1 सिंधिया के शिविर से लौटने के बाद राघवदेव को सन्देहवश महाराणा ने मरवा डाला (जिसका वर्णन ऊपर किया गया है) ऐसे संकट पूर्ण समय में इस प्रकार के विवेकहीन कृत्य से महाराजा की स्थिति अधिक कठिन हो गई।

2 Dr, K. S. Gupta Mewar and the Maratha Relations P. 91

3 माणेराव ठिकाने के प्राचीन दस्तावेज। महाराणा रत्नसिंह का वि सं 1825, प्रथम श्रावण बदि 13 का परवाना। महाराणा अरिसिंह का वि सं 1825, आसोज बदि 7 का परवाना।

अरिसिंह और सिंधिया की सेनाओं मे युद्ध प्रारम्भ हुआ। तीन दिन तक बिना हार-जीत लड़ाई होती रही। चौथे दिन राजपूतो ने केसरिया बाना पहन कर सिंधिया की सेना पर जबरदस्त आक्रमण कर मराठो को तितर-बितर कर दिया। मराठा सेना की हार निश्चित थी, किन्तु उसी समय देवगढ के रावत जसवन्तसिंह द्वारा भेजी हुई 15000 नागो (महापुरुषो) की सेना आ पहुंची, जिसके कारण विजय का झंडा मराठो के हाथ मे रहा।[1] इस युद्ध मे पहाड़सिंह और उम्मेदसिंह मारे गये। दौलामिया और राघोराम भी खेत रहे। वनेडा के रायसिंह, रावत कल्याणसिंह और जुझकरण घायल हुए। राजराणा जालिमसिंह, रावत मानसिंह और मेहता अगरचन्द पकड़े गये। उज्जैन युद्ध मे लौटने के बाद जब ठाकुर वीरमदेव घाणेराव पहुंचे तो महाराणा ने उनकी वीरता पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए उदयपुर आने के लिये खास रुक्का भिजवाया।[2]

उज्जैन मे विजय प्राप्त करने के पश्चात सिंधिया प्रबल सेना लेकर मेवाड पर चढ आया और उदयपुर का घेरा डाल दिया। ठाकुर वीरमदेव घायल होने से स्वय उदयपुर नही आ सके। लेकिन अपनी जमीयत महाराणा के पास भेज दी।[3] महाराणा ने उनको गोडवाड़ और देसूरी की नाल की रक्षा का दायित्व दिया।

महाराणा की शक्ति अत्यन्त क्षीण हो गई थी और साधन कम हो गये थे। ऐसे समय मे अमरचन्द बडवा को नगर के दुर्ग की रक्षा का दायित्व दिया गया, जिसने बडी चतुराई के साथ आर्थिक एव सामरिक व्यवस्था की। छः माह के घेरे के बाद भी सिंधिया नगर की रक्षा व्यवस्था को भग नहीं कर सका। उधर सिंधिया को रत्नसिंह की ओर से रुपया मिलने की उम्मीद नहीं थी, इसलिये

1 वही, पृ॰ 94

2 घाणेराव ठिकाने के प्राचीन दस्तावेज।

3 मेवाड के सरदार महाराणा अरिसिंह की नीतियो एव व्यवहार से असन्तुष्ट थे ही, इस युद्ध मे पराजय के कारण महाराणा के पक्ष के कई सामन्त निराश होकर निष्क्रिय हो गये, ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि उज्जैन के युद्ध के बाद सलूम्बर रावत भीमसिंह (पहाड़सिंह का पुत्र) बदनोर ठाकुर अक्षयसिं और कुराबड रावत अर्जुनसिंह ही महाराणा के मुख्य सहायक रह गये थे।

महाराणा की ओर से सन्धि प्रस्ताव आने पर महाराणा से साठ लाख रुपया प्राप्त करने की शर्त पर सन्धि हो गई, जिसके अनुसार रत्नसिंह को सवा लाख की जागीर देकर मदसौर में रखना तय हुआ। सिंधिया वि सं. 1826 श्रावण वदि 3 (21 जुलाई 1769) को वापस लौट गया। और गोविन्द राव तथा महाराजा विजयसिंह को अपना प्रतिनिधि बनाकर मेवाड़ में अपने हितो का ध्यान रखने का दायित्व देकर गया।[1]

किन्तु रत्नसिंह मदसौर नही गया। आगामी वर्ष देवगढ़, भीण्डर आदि के सरदार नागा (महापुरुषो) की एक बडी सेना मेवाड पर चढा लाये। महाराणा ने उससे लडाई का निश्चय कर अपने सरदारो की जमीयतें एकत्रित की। महाराणा की सेना मे सिन्धी सैनिको के अलावा महाराणा के काका बाघसिंह और अर्जुनसिंह, आमेट रावत प्रतापसिंह, कोठारिया रावत फतहसिंह, घाणेराव ठाकुर वीरमदेव, महता अगरचन्द, बडवा अमरचन्द पवार राव शुभकरण, बदनोर कुँवर ज्ञानसिंह, रूपाहेली का शिवसिंह, घाणोद का विशनसिंह, नारग्गई का सूरजमल तथा अन्य सरदार अपने सैनिको सहित शामिल थे। टोपला गाव मे युद्ध हुआ, जिसमे महाराणा की विजय हुई। किन्तु कुछ समय बाद देवगढ रावत जसवन्तसिंह ने फिरगी सरदार समरू को ससैन्य मेवाड पर आक्रमण के लिये भेजा, जिसको महाराणा ने खारी नदी के किनारे पर युद्ध म पराजित किया। इस पर भी महाराणा विरोधी सरदार निराश नही हुए। वे पुन दस हजार नागो की सेना लेकर मेवाड मे घुस आये। उधर वे कुम्भलगढ से गोडवाड परगने पर कब्जा करने की चेष्टा करने लगे और कुछ भाग पर दखल कर लिया। महाराणा ने काका बाघसिंह को सेना देकर गोडवाड भेजा और घाणेराव ठाकुर को अपनी जमीयत सहित इस सेना मे सम्मिलित होकर गोडवाड की रक्षा तथा विरोधियो को वहा से निकालने के लिये रुक्का भेजा। गोडवाड के अन्य सर-

---

1 उदयपुर के खजाने मे पूरा रुपया नही होने से जावद, जीरण, नीमच और मोरवण जिले शेष चौतीस लाख रुपये की राशि के चुकारे हेतु सिंधिया को दिये गये। दो वर्ष बाद अप्रेल 1771 ई मे महाराणा ने मराठो को 62 गाव और दिये। इससे मेवाड का बहुत बडा हिस्सा सदा के लिये महाराणा के हाथ से निकल गया। अप्रेल 1770 ई मे सिंधिया के दोनो प्रतिनिधियो, गोविन्दराव और जोधपुर महाराजा विजयसिंह न रत्नसिंह के विरुद्ध महाराणा की मदद के लिये गोडवाठ मे सैनिक कार्यवाही की। सितम्बर 1770 ई मे जब मेवाड मे सिंधियो ने उपद्रव किया तो सिंधिया ने महाराजा विजयसिंह को महाराणा की मदद के लिय सेना लेकर मेवाड जाने के लिये लिखा था।

दार भी इस सेना में सम्मिलित हो गये।[1] फिर सेना लेकर महाराणा गंगरार के पास पहुंचे, जहां महापुरुषों की सेना से लड़ाई हुई।

युद्ध में महाराणा की विजय हुई। (नवम्बर 1771 ई.) इस युद्ध के बाद रत्नसिंह की स्थिति अत्यन्त कमजोर हो गई और महाराणा ने सेना भेजकर चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया।[2] उधर गोडवाड़ से भी रत्नसिंह के पक्षपातियों को महाराणा की सेना ने बाहर निकाल दिया। रत्नसिंह का फिर भी कुम्भलगढ़ पर अधिकार बना रहा।

गोडवाड़ में विरोधियों का दखल उठाकर काका महाराज बाघसिंह वापस लौटे। कुम्भलगढ़ में रत्नसिंह का अधिकार तथा गोडवाड़ की असुरक्षित स्थिति को देखते हुए महाराणा के लिये आवश्यक हो गया कि वे गोडवाड़ के सामरिक महत्व के क्षेत्र की सुरक्षा तथा रत्नसिंह को कुम्भलगढ़ से उदयपुर की ओर नहीं बढ़ने देने की दृष्टि से गोडवाड़ में एक स्थायी सेना तैनात करें। किन्तु पिछले दस वर्षों के गृह-युद्ध तथा बहुत से सरदारों के विरोधी होने के कारण महाराणा के पास पर्याप्त सेना नहीं बची थी। उदयपुर नगर की रक्षा, मेवाड़ के अन्य भागों में होने वाले उत्पातों को दबाने तथा मराठों के आकस्मिक आक्रमणों का सामना करने की दृष्टि से भी महाराणा के पास आवश्यक सेना नहीं थी। ऐसी स्थिति में जोधपुर के महाराजा विजयसिंह की सहायता लेना आवश्यक समझा गया। पहिले महाराजा ने महाराणा की सहायता के एवज में गोडवाड़ परगने की मांग की थी। घाणेराव ठाकुर वीरमदेव तथा कुरावड़ रावत अर्जुनसिंह के माध्यम से पुनः महाराजा विजयसिंह से वार्ता की गई। महाराणा अरिसिंह महाराजा विजयसिंह को गोडवाड़ इन शर्तों पर देने को राजी हो गये कि महाराजा विजयसिंह कुम्भलगढ़ से रत्नसिंह को निकाल देंगे और 3000 सैनिक नाथद्वारे में तैनात रखेंगे, जोधपुर महाराजा गोडवाड़ की रक्षा करेंगे तथा खालसा भूमि की आय प्राप्त करेंगे, किन्तु गोडवाड़ परगने के प्रथम श्रेणी के सरदार घाणेराव तथा अन्य छोटे सरदार मेवाड़ के

---

1 घाणेराव ठिकाने के प्राचीन दस्तावेज। वि.सं. 1826, चैत सुदि 10 (5 अप्रेल 1770 ई.) को ठाकुर वीरमदेव को पत्र भेजकर जोधपुर महाराजा ने भी गोडवाड़ में फौज आने पर चिन्ता व्यक्त की और लिखा कि 'आप जैसा लिखेंगे वैसा करना होगा।'

2 रावत भीमसिंह का ठाकुर वीरमदेव के नाम वि० सं० 1828, कार्तिक सुदि 13 (20 नवम्बर, 1771 ई०) का परीता।

महाराणा के सेवक बने रहेगे और दस्तूर (खिराज) आदि देते रहेंगे। जोधपुर महाराजा ने 700 सैनिक (500 पैदल तथा 200 अश्वारोही) नाथद्वारा मे रखना तथा आवश्यकता पडने पर 3000 सैनिक उपलब्ध कराने की बात मजूर की। वि० स० 1828 (1771 ई०) के प्रारम्भ मे इस पर समझौता हो गया[1] और गोडवाड के परगने का प्रबन्ध जोधपुर महाराजा को दे दिया। इसके साथ ही गोडवाड का सम्पन्न परगना सदा के लिये मेवाड से अलग हो गया[2] निश्चय ही दस वर्षों के गृह युद्ध ने मेवाड को तहस-नहस कर दिया था। उपरोक्त समझौते के बाद भी रत्नसिंह कुम्भलगढ मे बना रहा और महाराजा विजयसिंह ने उसको वहा से हटाने का कोई उद्योग नही किया। इस पर महाराणा ने महाराजा से गोडवाड वापस लौटाने की माग की, किन्तु महाराजा ने कोई ध्यान नही दिया। महाराणा इतने अशक्त थे कि उसको वापस प्राप्त करने के लिये एक नया युद्ध छेडना उनके लिये बिल्कुल असम्भव था।

वि स 1829 चैत्र बदि (9 मार्च 1773 ई) को शिकार के समय महाराणा अरिसिंह बूदी के रावराजा अजीतसिंह द्वारा धोखे से मार दिये गये।

जैसा कि ऊपर लिखा गया है महाराणा अरिसिंह और महाराजा विजयसिंह के बीच गोडवाड सम्बन्धी समझौता ठाकुर बीरमदेव की मध्यस्थता से हुआ था।

वि० स० 1827 पौष सुदि 13 (10 दिसम्बर, 1770 ई०) को जोधपुर महाराजा की ओर से मूथा सरीचन्द ने महाराणा के प्रधान कायस्थ जसवतराम के नाम पत्र लिखा कि गोडवाड के सरदार तो महाराणा के अधिकार म रहे और खालिसा पर महाराजा जोधपुर का कब्जा रहे। इसके एवज महाराजा की तरफ से दो सौ सवार और पाँच सौ पैदल महाराणा की नौकरी मे रहे और कही सेना मे आवें उस समय तीन हजार सवारो की जमीयत आकर शामिल हो। जब तक मारवाड की जमीयत मेवाड मे रहे तब तक इलाके पर मारवाड राज्य का दखल रहेगा। जब जमीयत नही रहेगी इलाका दरबार मेवाड को सौंप दिया जायगा।

ऐसा प्रतीत होता है कि मेवाड और मारवाड के बीच यह समझौता सिंधिया की बिना जानकारी के हुआ। उस समय सिंधिया ने महाराजा विजयसिंह को मेवाड के मामलो म अपना प्रतिनिधि बना रखा था। सिंधिया ने मारवाड से वसूल की जाने वाली खिराज मे गोडवाड की आय का चौथा हिस्सा भी जोड दिया था।

१

२

हस्ताक्षरित इकरार नामे का आदान प्रदान भी ठाकुर वीरमदेव के माध्यम से ही हुआ था। महाराणा अरिसिंह के जीवित रहने तक गोडवाड के सरदार महाराणा को अपना स्वामी मानते रहे। बाद में उनकी जागीरों के आन्तरिक तथा पारस्परिक बखेड़ों को निपटाने की मेवाड़ राज्य की शक्ति नहीं रही और सरदार भी मनमानी करने लगे। तब जोधपुर महाराजा ने साम, दाम, दंड, भेद आदि की नीति से गोडवाड के सरदारों को अपने अधीन कर लिया और उनको भी मारवाड में मिला लिया। केवल देसूरी के ठाकुर वीरमदेव सोनगरा ने जोधपुर महाराजा का आधिपत्य स्वीकार नहीं किया। इस पर महाराजा ने सेना भेजकर देसूरी पर कब्जा कर लिया। महाराणा ने देसूरी के ठाकुर को रूपनगर की जागीर प्रदान की।

जोधपुर महाराजा ने ठाकुर वीरमदेव को अपनी ओर मिलाने के लिये उपरोक्त समझौते के बाद से ही प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये। महाराजा ने ठाकुर वीरमदेव को प्रसन्न करने के लिये घाणेराव के व्यापारियों से मारवाड राज्य में दाण नहीं लेने का परवाना वि स 1828 कार्तिक सुदि 8 (14 नवम्बर, 1771 ई) को कर दिया। उन्होंने महाराणा अरिसिंह के वि स 1822 के परवाने के अनुसार ठाकुर वीरमदेव को घाणेराव का 42000) रुपयों की आय का पट्टा बहाल करने की खातरी का वि स 1829, कार्तिक वदि 11 (22 अक्टूबर, 1772 ई) को परवाना कर दिया। वि स 1930 चैत्र सुदि 14 (26 मार्च, 1774 ई) के परवाने द्वारा घाणेराव ठाकुर की दमूद में चौथाई छूट दी गई।[1] इसके अतिरिक्त उनको जोधपुर आने के लिये कई खास रुक्के उनकी खातरी के लिए भेजे गये तथा उनको लिवा लाने के लिये चण्डावल तथा खीवसर ठाकुरों को घाणेराव भेजा गया तथा अन्य प्रकार से प्रलोभन, दबाव आदि का प्रयोग किया गया। किन्तु वे वि स 1830 तक जोधपुर नहीं गये। अन्त में वि स. 1831 वैसाख सुदि 9 (9 मई, 1775 ई०) का महाराजा विजयसिंह का रुक्का प्राप्त होने के पश्चात ठाकुर वीरमदेव ज्येष्ठ माह में चाणोद नाडलाई, खोड़, वेडा, नाणा, साडेराव, बवलापावा, बीजापुर, बीजावत, सोदरड़ी, सालरिया आदि सरदारों को साथ लेकर जोधपुर पहुंचे।[2] महाराजा विजयसिंह ने रातेनाडे स्थान तक आगे आकर ठाकुर वीरमदेव का सम्मान किया और ठाकुर पद्मसिंह के वि. स. 1796 [1739 ई] के लेख के अनुसार कुरब बहाल रखा। इस अवसर पर

1 घाणेराव ठिकाने के प्राचीन दस्तावेज।

2 वही।

ठाकुर दुर्जनसिंह (दूसरे)

ठाकुर वीरभदेव की मृत्यु के बाद उनके कुंवर दुर्जनसिंह वि स. 1835 (1778 ई) म घाणेराव के स्वामी हुए। ठाकुर दुर्जनसिंह को मेवाड के महाराणा भीमसिंह तथा जोधपुर के महाराजा विजयसिंह दोनों राजाओ के ठाकुर वीरभदेव के स्वर्गवास पर शोक प्रकट करने के खास रुक्के प्राप्त हुए।

गोडवाड के सबध मे मेवाड और मारवाड राज्यो के बीच हुए समझौते के अनुसार घाणेराव ठाकुर और गोडवाड परगने के अन्य सरदार मेवाड के महाराणा के चाकर थे। किन्तु महाराणा की अत्यधिक शक्तिहीनता तथा मारवाड के महाराजा के दबाव के कारण घाणेराव ठाकुर वीरभदेव जोधपुर महाराजा के दरबार मे हाजिर हो गये थे। जोधपुर महाराजा ने घाणेराव के नये ठाकुर को मारवाड राज्य के साथ बनाये रखने की दृष्टि से ठाकुर दुर्जनसिंह को तसल्ली के ऐस खास रुक्के और परवाने भिजवाये।[1]

वि स 1836, माघ सुदि 2 (7 फरवरी, 1780 ई) को महाराजा विजयसिंह ने गोडवाड परगने के अन्तर्गत ठाकुर वीरभदेव के घाणेराव के पट्टे के निम्न 36 गाव ठाकुर दुर्जनसिंह को इनायत करने का परवाना किया।[2]

---

1 घाणेराव ठिकाने के प्राचीन दस्तावेज।

2 वही। मेवाड राज्य की ओर से घाणेराव पट्टे मे जो गांव गोडवाड परगने के अन्तर्गत मिले हुए थे, उन पर जोधपुर महाराजा ने घाणेराव ठाकुर का स्वत्व मान लिया था।



घोड़े पर सवार ठाकुर दुर्जनसिंह
(नवलगढ़ कुंवर श्री संग्रामसिंह का संग्रहालय)

1 घाणेराव 2 नाडोल 3 लालीलाई 4 कोटड़ी 5 गुड़ाडो 6 राणीगाव बड़ो 7 दादाई 8 ईटन्डो 9 देवली 10 कोट 11 रामारोवास 12 किशनपुरो 13 जीवद बगै 14 राखी 15 करली 16 छोटो 17 नीपरड़ो 18 नवोगुडो 19 डायलाणा छोटो (खुद) 20 सोटाडो 21 नादाणो बड़ा 22 ढालोप 23 सावलतो 24 पडोयारियारो गुडो 25 मानलिया रो गुडो 26 दुदापुरो 27 रूपसी रो गुडो 28 जाटा रो गुडो 29 महाराम रो गुडो 30 पादरडी 31 कल्याणसिंघ रो गुडो 32 वहल 33 रामपुर 34 पदमपुरो 35 माडीकर 36 वीरमपुरो।

मेवाड के महाराणा अभी भी घाणेराव ठाकुर को अपना सामन्त मानते थे और गोडवाड परगने तथा मुख्यत देसूरी की नाल तथा कुम्भलगढ की रक्षा की दृष्टि से इन पर भरोसा करते थे और यह आशा करते थे कि घाणेराव ठाकुर की स्वामी-भक्ति उनके प्रति बनी रहेगी और जब कभी सुअवसर आवेगा, घाणेराव ठाकुर गोडवाड परगना मेवाड म वापस लाने म सहायता देंगे। इसी आशय से कुछ खास रुक्के महाराणा भीमसिंह वि स 1835 (1778 ई) से आगामी अठारह वर्षों के दौरान निरन्तर ठाकुर दुर्जनसिंह को भेजते रहे। ठाकुर दुर्जनसिंह ने भी अपने पिता ठाकुर वीरमदेव की दोनो राज्यो से सम्बन्ध बनाये रखने की नीति का अनुसरण किया। वि, स 1838 के आषाढ़ महिने मे ठाकुर दुर्जनसिंह की ओर से पांच सौ रुपयो का एक घोडा महाराणा को भेंट-स्वरूप भेजा गया।[1]

जोधपुर महाराजा विजयसिंह ने राज्य की ओर से गोडवाड की रक्षा का भार घाणेराव ठाकुर दुर्जनसिंह को सौंपा। महाराजा ने दक्खिणियो (मराठा) से गोडवाड की सुरक्षा के लिये घाणेराव ठाकुर को रुक्के भिजवाये महाराजा ने दमू ध माफी का तथा घर गिनती नही लेने का परवाना भिजवाया।[2]

इन्ही दिनों मे महाराजा का रुक्का मिलने पर ठाकुर दुर्जनसिंह अपनी जमीयत लेकर दर्रे के घाटे के पास मेर-रावतो का उत्पात खत्म करने के लिये जोधपुर राज्य की सेना म शामिल हुए और वहां जाकर उनको दड दिया, इस पर महाराजा ने प्रसन्नता का खास रुक्का भिजवाया।[3]

वि स 1843 (1786 ई) में घाणेराव को मराठा सेना के आक्रमण का शिकार होना पड़ा। वि सं 1837 (1780 ई) के लगभग जोधपुर के महाराजा

1 वही। 2 वही। 3 वही।

विजयसिंह और मराठा सरदार महादजी सिंधिया के सबंध खराब हो गये और महाराजा विजयसिंह सिंधिया से मुक्ति प्राप्त करने के लिये कोशिश करने लगे। मेवाड के आतरिक कलह मे सिंधिया चूडावतो का पक्ष ले रहा था जबकि महाराजा विजयसिंह शक्तावतो को सहयोग देने लगे। 1782 ई के बाद विजयसिंह पुन सिंधिया के विरुद्ध जोधपुर एव जयपुर के बीच मैत्री का प्रयास करने लगे और फरवरी 1787 ई म यह सधि सम्पन्न हुई। इधर गोडवाड साभर, उमरकोट आदि इलाको पर अधिकार हो जाने से मारवाड राज्य की आर्थिक स्थिति अच्छी हो गई थी। महाराजा ने अगस्त 1785 ई म नजफकुलीखा से सधि की ओर फरवरी 1786 ई मे होलकर से सहायता की माग की। 1 जून, 1786 ई मे महाराजा विजयसिंह ने अग्रेजो से सिंधिया के विरुद्ध सहायता के लिये पेशकश की। उन्होंने सिंधिया और पेशवा के दूतो की गतिविधियो पर रोक लगा दी। इतना ही नही महाराजा ने अफगाना, सिखो तथा अवध के नवाब को भी सहायता के लिये लिखा और मारवाड मे (लामबदी सनिको की भर्ती) शुरु कर दी। इन कार्यवाहियो से सिंधिया बहुत नाराज हुआ। वि स 1843 (1786 ई) मे सिंधिया का सेनापति मिर्जा इस्माइल बेग सेना लेकर गोडवाड पर चढ आया।[1] जब महाराजा विजयसिंह को गोडवाड की ओर मराठा सेना के आने के समाचार मिले तो उन्होंने ठाकुर दुर्जनसिंह को खास रक्का भिजवाकर गोडवाड मे किसी तरह का नुक्सान नही होने तथा रक्षा का पूरा इतजाम करने के लिये लिखा। इस्माइल बेग न घाणेराव को घेर लिया और सेना के व्यय के लिये एक लाख रुपये की माग की। घाणेराव ठिकाने और गोडवाड को बरबादी से बचाने के लिये मराठों को साठ हजार रुपये नकद एव जेवर के रूप म दिये गये। शेष चालीस हजार रुपयो के एवज घाणेराव ठिकाने से पचोली भवानीराम और किशोरसिंह ओल म दिये गये, जिनको रुपये भेजकर तीन वर्ष बाद मराठो से छुडाया गया।[2] 24 मार्च, 1787 ई को सिंधिया सेना लेकर दौसा पहुचा। महाराजा विजयसिंह ने सिंधिया के विरुद्ध जयपुर के महाराजा की सहायता के लिये अपने पुत्र जालिमसिंह को सेना देकर भेजा। 28 जुलाई, 1787 ई को तुगा के

1 घाणेराव की ख्यात म लिखा है कि यह सेना महाराणा की आज्ञा से आई थी। यह संभव है कि सिंधिया तथा जोधपुर के महाराजा के बीच उत्पन्न शत्रुता को देखते हुए महाराणा ने सिंधिया को गोडवाड वापस मेवाड को दिलाने के लिये कहा हो। उसके बाद इस्माइल बेग 1790 ई में सिंधिया के विरुद्ध हो गया तो महाराजा विजयसिंह ने उसको अपनी ओर मिला लिया।

2 घाणेराव ठिकाने की ख्यात एव प्राचीन दस्तावेज।

युद्ध में सिंधिया की पराजय हुई और महाराजा विजयसिंह का अजमेर पर भी पूरा अधिकार हो गया।

वि. स. 1847 1790 ई.) में महादजी सिंधिया ने अपनी हार का बदला लेने के लिये मारवाड पर चढाई की। घाणेराव ठाकुर दुर्जनसिंह को जब इसका पता चला तो उन्होने जोधपुर महाराजा से युद्ध मे भाग लेने की आज्ञा मागी। किन्तु महाराजा ने उनको मेड़ता नही आकर, जहा मारवाड, बीकानेर और किशनगढ की सेनाएँ सिंधिया का मुकाबला करने के लिये एकत्रित हो रही थी, घाणेराव मे रहते हुए ही गोड़वाड़ की रक्षा का प्रबन्ध करने की आज्ञा दी। इस पर ठाकुर दुर्जनसिंह मेड़ते नही गये और अपने पितामह ठाकुर बिशनसिंह को जमीयत देकर घाणेराव की ओर से मेड़ते भेजा। जालोर, देसूरी और सिरोही से सेनायें मेडता बुलाई गई। 10 सितम्बर, 1790 ई. को मेडता के निकट डागावास गाव मे युद्ध हुआ, जिसमे सिंधिया की विजय हुई और सिंधिया ने मेडता पर अधिकार कर लिया। इस युद्ध मे ठाकुर बिशनसिंह खेत रहे। महाराजा विजयसिंह को महादजी सिंधिया से सन्धि करनी पडी, जिसके अनुसार उन्होने गोडवाड और मारवाड दोनो क्षेत्रो के लिये एक लाख पचास हजार रुपये वार्षिक खिराज देना मजूर किया।

वि स, 1849 (1792 ई) तक कुम्भलगढ मे रत्नसिंह की स्थिति अत्यन्त कमजोर हो चुकी थी और महाराणा भीमसिंह ने उसको वहा से निकालने का निर्णय किया। उससे पूर्व जब माधवराव सिंधिया रावत भीमसिंह से चित्तौड खाली कराकर (17 नवम्बर, 1791 ई.) मेवाड से लौटा, उस समय वह अपने प्रतिनिधि अबाजी इगलिया को मेवाड का सुप्रबन्ध करने और रत्नसिंह को कुम्भलगढ से बाहर निकालने आदि का उत्तरदायित्व देकर गया। तदनुसार अबाजी इंगलिया ने मराठा सेना तथा शिवदास गाधी, मेहता अगरचन्द, किशोरदास देपुरा, रावत अर्जुनसिंह आदि सरदारो सहित मेवाड की सेना को लेकर कुम्भलगढ पर चढाई की। महाराणा के सरदारों ने खमणोर गाव मे पहुंच कर घाणेराव ठाकुर दुर्जनसिंह को सूचित किया कि रत्नसिंह से कुम्भलगढ खाली कराने के लिये हम देलवाडे की तरफ से कुम्भलगढ आते हैं आप देसूरी की तरफ से किले पर चढ़ जावें। ठाकुर दुर्जनसिंह ने मेवाड के सरदारो के प्रस्ताव को स्वीकार किया।[1] उधर महाराणा की सेना के आगे बढने पर समीचा गाव के पास रत्नसिंह के पक्षधर जोगियो से उसका सामना हुआ, जिसमे जोगी हार कर भाग गये। महाराणा की

1 घाणेराव ठिकाने के प्राचीन दस्तावेज।

सेना ने आगे बढ़कर कैलवाड़े पर अधिकार कर लिया। मेवाड़ के सैनिक आरेट पोल की तरफ से और ठाकुर दुर्जनसिंह दूसरी ओर से किले पर चढ़ गये। रत्नसिंह अपने साथियों सहित कुम्भलगढ़ से भाग निकला और वि. सं. 1849, पौष वदि 7 (6 दिसम्बर, 1793 ई.) को महाराणा का दुर्ग पर अधिकार हो गया।[1] कुम्भलगढ़ पर अधिकार करने में दी गई सहायता के लिये महाराणा भीमसिंह ने ठाकुर दुर्जनसिंह को एक हाथी, एक किलाणा घोड़ा और एक अमर बलेणा घोड़ा बख्शा तथा घाणेराव की दमूद तथा सदा की भांति घाणेराव ठिकाने के व्यापारियों को दाण से मुक्त रखने के आदेश किये। वि. सं. 1849, माघ वदि 13 (10 जनवरी, 1791 ई.) को महाराणा ने परवाना जारी करके घाणेराव ठाकुर के उदयपुर आने पर महाराणा का सामने आकर स्वागत करने, नक्कारा नगर के दरवाजे तक बजाने, राजधानी स्थित पहिले की वाटिका के बजाय दूसरी जगह डेरे देने, प्रति वर्ष दशहरे का सिरोपाव मिलने तथा कुंवर हिम्मतसिंह (ठाकुर दुर्जनसिंह के पुत्र) को अन्य उमरावों के पुत्रों के समान रीति-अनुसार पट्टे आदि देने के आदेश किये। वि. सं. 1850 में ज्येष्ठ माह में जोगियों ने मेवाड़ में पुनः उपद्रव पैदा करने की कोशिश की। ये गोडवाड़ से सादड़ी की ओर पहुंचे। महाराणा ने ठाकुर दुर्जनसिंह को खास रुक्का भेजकर कुम्भलगढ़ का जाब्ता रखने के लिये लिखा।[2]

महाराजा विजयसिंह के बुलाने पर वि. सं. 1837, 1842, 1847 और 1848, (1780, 1785, 1790 और 1791 ई.) में ठाकुर दुर्जनसिंह जोधपुर में महाराजा की सेवामें उपस्थित हुए। उस समय जोधपुर महाराजा ने राजधानी से बाहर आकर उनकी अगवानी की और परम्परा अनुसार बर्ताव रखा।[3]

वि. सं. 1848 (1791 ई.) में मारवाड़ में पुनः गृह-कलह उत्पन्न हो गया। महाराणा विजयसिंह की पासवान (उपपत्नी) गुलाबराय के राज्य के कामों में दखल देने के कारण मारवाड़ के कई सरदार अप्रसन्न होकर जोधपुर से चले गये। जब महाराजा उनको वापस लिवा लाने के लिये बीसलपुर गये, उस समय पीछे से महाराजा के पौत्र भीमसिंह ने जोधपुर किले और नगर पर अधिकार कर लिया

1 ओझा, पृ 683

2 घाणेराव ठिकाने के प्राचीन दस्तावेज।

3 वही।

और गुलाबराय को मरवा डाला।[1] दस माह तक भीमसिंह ने महाराजा को गढ के अन्दर नहीं घुसने दिया। अन्त में रीयां, कुचामन, मीठडी बलून्दा, चण्डावल और घाणेराव आदि के ठाकुरों के समझाने पर भंवर भीमसिंह ने सिवाणा की जागीर मिलने की शर्त पर दुर्ग छोड दिया। महाराजा ने दुर्ग पर अधिकार करते ही अपनी प्रतिज्ञा तोड दी और भीमसिंह पर सेना भेज दी। झंवर गांव में लडाई के बाद भीमसिंह पोकरण चले गये। इस गृह-कलह के अवसर पर ठाकुर दुर्जनसिंह ने महाराजा का साथ दिया। महाराजा के बुलाने पर वे जोधपुर पहुंचे और भंवर भीमसिंह को समझाने में सम्मिलित हुए तथा उनको गढ बाहर भेजकर महाराजा का जोधपुर दुर्ग पर अधिकार करा दिया। वि स. 1849, वैशाख वदि 7 (2 मई, 1713 ई) को महाराजा विजयसिंह ने पुन कुंवर जालिमसिंह को उदयपुर से बुलाकर गोडवाड का इलाका उनके नाम लिख दिया और उन्हें युवराज नियत कर दिया। महाराजा ने घाणेराव ठाकुर दुर्जनसिंह की सेवा से प्रसन्न होकर वि स 1850 चैत सुदि 13 (13 अप्रेल, 1794 ई) को 600 रुपये की आय का गांव रायपाणा तथा जैनावतों का गुडा उनको इनायत किये।

वि. सं. 1850, आषाढ वदि 30 [27 जून, 1794 ई] को महाराजा विजयसिंह का देहान्त हो गया और उनके पौत्र भीमसिंह पोकरण ठाकुर सवाईसिंह तथा अन्य सरदारों की सहायता से मारवाड की राजगद्दी पर आसीन हुए। इस पर स्वर्गीय महाराजा द्वारा नियुक्त उत्तराधिकारी जालिमसिंह तथा राज्यगद्दी के एक दावेदार स्वर्गीय महाराजा के अन्य पौत्र मानसिंह मारवाड में बखेडा करने लगे। इस पर नये महाराजा भीमसिंह ने फौज भेजकर जालिमसिंह को गोडवाड से निकाल

---

1 ख्यातों में लिखा है कि महाराजा के ज्येष्ठ पौत्र भीमसिंह के होते हुए भी गुलाबराय ने उसके छोटे पुत्र शेरसिंह को वि स 1847 (1790 ई०) में युवराज पद दिला दिया था, इससे नाराज होकर चांपावत, कूंपावत, ऊदावत और मेड़तिये सरदार भीमसिंह की तरफ चले गये थे। भीमसिंह महाराजा के ज्येष्ठ कुंवर फतहसिंह के पुत्र थे। फतहसिंह का अपने पिता की जीवितावस्था में देहान्त हो गया। इस पर महाराजा ने उनके पुत्र जालमसिंह को अपना उत्तराधिकारी बना दिया था, जो उदयपुर की राजकुमारी से उत्पन्न हुए थे। बाद में गुलाबराय ने महाराजा को पुत्र जालमसिंह और भीमसिंह दोनों के विरुद्ध कर दिया था। गोडवाड परगने में स्थित जालमसिंह के भाई की जागीर भी गुलाबराय ने शेरसिंह को दिलवा दी। इस पर कुंवर जालमसिंह उदयपुर चले गये।

दिया और मानसिंह ने जालोर दुर्ग मे शरण ली। जालिमसिंह भागकर उदयपुर पहुचे। वहा से महाराणा के कहने पर अम्बाजी इगल ने जालिमसिंह की सहायता के लिये अपनी सेना लेकर दिसम्बर, 1794 मे देसूरी के घाटे की ओर कूच किया। इस पर महाराजा भीमसिंह ने लखवा दादा से आग्रह किया कि वह अम्बाजी को कुम्भलगढ से आगे नही बढने दे। महाराजा ने देसूरी के घाटे पर मराठा सेना को रोकने के लिये भडारी शिवचन्द[1] की अध्यक्षता मे अपनी सेना भेजी जिससे घाणेराव मे अपना डेरा डाला। इस पर अम्बाजी की सेना आगे नही बढी। उसके बाद वि स 1855 (1798 ई) मे मानसिंह ने गोडवाड परगना मेवाड को लौटाने का वचन देकर महाराणा से सहायता मागी। महाराणा ने अम्बाजी एव जालमसिंह के साथ सेना रवाना की किन्तु बनराज की अध्यक्षता मे मारवाड की सेना ने बघवाली के पास मेवाड की सेना को रोक दिया। उसी समय जालमसिंह का देहान्त हो गया। इस पर मेवाड की सेना वापस लौट गई।[2]

मारवाड की ख्यातो मे उल्लेख मिलता है कि वि स 1852 (1795 ई) मे भडारी शिवचद (शोभाचद) की अध्यक्षता मे मारवाड राज्य की सेना ने घाणेराव को घेर लिया। डेढ मास तक छुटपुट लडाइया होती रही किन्तु सरकारी सेना का घाणेराव पर अधिकार नही हो सका।[3] इससे प्रतीत होता है कि मारवाड राज्य के उत्तराधिकार के कलह मे घाणेराव ठाकुर दुर्जनसिंह की सहानुभूति स्वर्गीय महाराजा द्वारा नियुक्त उत्तराधिकारी और मेवाड के महाराणा के दौहित्र जालमसिंह के साथ थी, जिनको गोडवाड परगना मिला हुआ था। अम्बाजी की सेना के वापस लौट जाने तथा घाणेराव ठाकुर से सुलह हो जाने पर घेरा डालने के डेढ माह बाद मारवाड राज्य की सेनाएँ घाणेराव से हटाली गई।[4]

उपरोक्त घटना के बाद महाराजा भीमसिंह ने महाराजा जालिमसिंह के सबध मे समझौता करने के लिये तथा मेवाड से सम्बन्ध सुधारने के लिये घाणेराव ठाकुर दुर्जनसिंह के माध्यम से महाराणा भीमसिंह से वार्ता प्रारम्भ की। किन्तु जालिमसिंह का देहावसान हो जाने से यह प्रयास बन्द हो गया।

---

1 महाराजा मानसिंह की ख्यात (स डॉ नारायणसिंह भाटी) मे सेनापति का नाम भण्डारी सोभासिंह लिखा है।
2 घाणेराव ठिकाने के प्राचीन दस्तावेज।
4 महाराजा मानसिंह की ख्यात–स डॉ नारायणसिंह भाटी, पृ 33
4 घाणेराव ठिकाने के प्राचीन दस्तावेज।

वि स 1854 (1797 ई) मे महाराजा भीमसिंह ने मानसिंह से जालौर दुर्ग और उनका इलाका छीनने के लिये सिंघी अखैराज को सेना देकर जालौर भेजा। महाराजा भीमसिंह ने वि स 1854, ज्येष्ठ वदि । को खास रुक्का भेजकर ठाकुर दुर्जनसिंह को सेना मे सम्मिलित होने के लिये लिखा। इस पर ठाकुर दुर्जनसिंह अपनी जमीयत लेकर सेना मे सम्मिलित हुए।[1]

वि स 1856, फाल्गुन वदि 7 (16फरवरी, 1800 ई) को ठाकुर दुर्जनसिंह का देहान्त हो गया। उनके दो कुवर हम्मीरसिंह और अजीतसिंह हुए।[2]

ठाकुर दुर्जनसिंह ने महाराजा भीमसिंह की आज्ञानुसार जोधपुर मे हवेली बनाने के लिये जमीन खरीदी थी, किन्तु उनका देहावसान हो गया और बाद मे ठाकुर अजीतसिंह के काल मे जप्ती हो जाने से हवेली बनाने का कार्य बन्द हो गया।[3]



1 वही।
2 वही।
3 वही।

ठाकुर हमीरसिंह

ठाकुर दुर्जनसिंह क देहान्त के बाद उनके ज्येष्ठ कुंवर हमीरसिंह वि स 1856 फाल्गुन वदि 7 (16 फरवरी, 1800 ई) को घाणेराव के स्वामी हुए। उनके पिता क देहावसान पर उनको मवाड क महाराणा भीमसिंह तथा जोधपुर के महाराजा भीमसिंह दानो की ओर से शाक सदेश एव तसल्ली के खास रुक्के प्राप्त हुए।[1]

जोधपुर महाराजा भीमसिंह का वि स 1856 आषाढ़ वदि 4 (10 जून, 1800 ई) का रुक्का ठाकुर हम्मीरसिंह का मिला जिसम उनको लिखा गया धाभाई शम्भुदान, दीवान सरदारमल तथा सिंघी ईन्दर राज को फौज देकर विदा कि है इसलिये अपने सैनिक और सामान लाकर उनक साथ जल्दी शरीक हो। हम्मीरसिंह तदनुसार अपनी जमीयत लेकर सेना के साथ शामिल हो गये।[2]

वि स 1857 आषाढ वदि 11 (17 जून, 1800 ई) को राजा भीमसिंह ने घाणेराव पट्टा ठाकुर हम्मीरसिंह को इनायत किये ... किये। इस परवान म ठाकुर दुर्जनसिंह को घाणेराव पट्टे न ठाकुर बनन

1 घाणेराव ठिकाने के प्राचीन दस्तावेज।

2 वही। इस समय महाराजा भीमसिंह ने यह सेना
सिंह के विरुद्ध भेजी होगी।
का देहान्त हो चुका था। किन्तु
बून कर रहे थे।

36 गांव गोडवाड परगने के घाणेराव पट्टे मे थे, उनके अतिरिक्त निम्नलिखित छ गाव उसमे और शामिल किये गये—

6000) गाव 2, डायलाणो और जेतावतो का गुडा
1000) गाव 1, अडमीपुरा
2000) गाव 1, पालडी
500) गाव 1, धनापुरो
500) गाव 1, श्यामपुरो

इस भांति घाणेराव पट्टे मे कुल 42 गाव कायम रखे गये।[1]

ठाकुर हम्मीरसिंह केवल छ माह घाणेराव ठिकाने के स्वामी रहने के बाद वि स. 1857, भाद्रपद वदि 14 (19 अगस्त, 1800 ई) को चल बसे। उनके देहान्त के समय उनके कोई सन्तान नही थी।



1 वही। डायलाणा और जेतावतों का गुडा जोधपुर महाराजा विजयसिंह द्वारा ठाकुर दुर्जनसिंह को 1794 ई. मे प्रदान किये गये थे। यह सम्भव है कि ये चार गांव भी ठाकुर दुर्जनसिंह के काल मे ही जोधपुर महाराजा ... हुए हों।

मे भी शरीक नही हुए।[1] अप्रसन्न सरदारो द्वारा शिकायत करने पर महाराजा ने वि स 1860 (1803 ई) मे मुहता साहबचन्द को चादावत जैतसिंह, हनवतसिंह, बदनसिंह अभेयसिंह आदि सरदारो तथा मेवाड के स्वामियो (साधुओ) और पालनपुर क अरबो के साथ बडी सेना घाणेराव पर अधिकार करने के लिये भेजी। राज्य की सेना ने घाणेराव दुर्ग को घेर लिया।[2]

उस समय ठाकुर अजीतसिंह सपरिवार मेवाड मे थे। जोधपुर से सेना की कूच के समाचार पाकर वे तत्काल घाणेराव पहुचे। घाणेराव ठाकुर के काका ख्वासणिया विक्रमदेव ने दुर्ग की रक्षार्थ बडी वीरता दिखाई। घाणेराव के सैनिको ने राज्य की सेना का बडी वीरता के साथ मुकाबला किया और साहस एव दृढता के साथ दुर्ग की रक्षा करते रहे। जब राज्य की सेना दुर्ग म प्रवेश नही कर सकी तो चारो ओर से नाकेबन्दी करके रसद के मार्ग अवरुद्ध कर दिये गये। अनाज के अभाव मे दुर्ग के सैनिक कई दिनो तक गुड, गोंद और अजवायन आदि खाकर भी युद्ध करते रहे और दुर्ग पर राज्य की सेना के आक्रमणो को विफल करते रहे। अत म कोई उपाय न देखकर ठाकुर ने दुर्ग खाली कर दिया और मेवाड चले गये। भयानक नरसहार के बाद 8 जून 1804 ई० को राज्य की सेना ने घाणेराव दुर्ग पर अधिकार कर लिया और गढ एव महल आदि तोड दिये।[3] उसके साथ ही

---

1 कर्नल जेम्स टाड का कथन है कि ठाकुर अजीतसिंह जब घाणेराव की गद्दी पर बैठे तो उन्होने गद्दीनशीनी पर तलवार बन्धाई की रस्म जोधपुर के महाराजा द्वारा नही करवा कर महाराणा भीमसिंह से करवाई। निश्चयत यह जोधपुर के महाराजा को अप्रसन्न करने वाली कार्यवाही थी।

2 महाराजा मानसिंह री ख्यात (स डा नारायणसिंह भाटी पृ 33) पर उल्लेख है कि जिस समय मुता साहबचन्द ने घाणेराव पर चढाई कर रखी थी उस समय घाणेराव ठाकुर दुर्जनसिंह की मृत्यु हो गई और अजीतसिंह अपने परिवार के साथ मेवाड म थे। किन्तु ख्यातो का यह कथन सही नही है, क्योकि ठाकुर दुर्जनसिंह वि स 1856 म चल बसे थे। उनके बाद छ माह तक उनके पुत्र ठाकुर हमीरसिंह घाणेराव के स्वामी रहे। ठाकुर अजीतसिंह वि स 1857 म घाणेराव के स्वामी हुए। मानसिंह वि स. 1807 मे मारवाड के महाराजा बने। उसके बाद उन्होने घाणेराव पर फौजकशी की।

3 घाणेराव की ख्यात मे उल्लेख है कि घाणेराव का घेरा छ महिने तक रहा। किन्तु महाराजा मानसिंह री ख्यात (पृ० 33) म उल्लख है कि घाणेराव

1944 ई) रविवार को हुआ। आपका विवाह कोटा राज्य के ठिकाना पलायता के ठाकुर हाडा अजीतसिंह के कु वर जसवतसिंह के साथ 7 जुलाई, 1965 ई. को हुआ।

9 बाईजी जीतेन्द्र कु वर का जन्म वि स 2003, कार्तिक सुदि 7 (1 नवम्बर, 1946 ई) शुक्रवार को हुआ। आपका विवाह बीकानेर राज्य के ठिकाना कूडसू के ठाकुर भाटी कानसिंह के पाटवी कु वर देवेन्द्रसिंह के साथ 5 जुलाई, 1965 ई को हुआ। कु वर देवेन्द्रसिंह भारतीय पुलिस सेवा मे अधिकारी हैं।

कु वरो को गाव प्रदान करना

ठाकुर साहब के पाटवी कु वर सज्जनसिंह हैं। ठाकुर साहब ने अन्य तीन कु वरो को आजीविका के तौर पर ठिकाने से निम्नानुसार गाव प्रदान किये हैं :—

1 कु वर पुष्पेन्द्रसिंह को गाव लानराई और गाव गुडा कल्याणसिंह तथा घाणेराव मे भोपजी का गुडा का बेरा और निवास के लिये एक हवेली प्रदान की।

2 कु वर महेन्द्रसिंह को गाव ईटदडा और गाव नादाणा तथा घाणेराव मे बेरा दवजी वाला और निवास के लिये एक हवेली प्रदान की।

3. कु वर महावीरसिंह को गाव ढालोप और गाव गिराली तथा घाणेराव मे बेरा खजूर वाला और निवास के लिये एक हवेली प्रदान की।

इसके अलावा लाडीजी सारगदेवजी [1] के हाथ-खर्च हेतु उनको गाव करणवा और घाणेराव मे अजीतबाग प्रदान किया।



1 वर्तमान ठाकुर साहब की धर्मपत्नी। आपका वि० स० 2020, प्रथम चै सुदि 11 (24 मार्च, 1964 ई) मगलवार को स्वर्गवास हो गया।

परिशिष्ट 1

थाणेराव ठिकाने के गांवों की फहरिस्त

देसूरी परगने के अन्तर्गत गाव

बासड़ो
भगवानपुरो
बीरमपुरो
छोड़ा
डायलाणो खुर्द
ढालोप
दादोपुरो
दुदवर
गवाड़ो
थाणेराव
गीराली (आधा गांव)
गुडा भोपसिंघ
गुडा देवड़ा
गुडा केसरसिंघ
गुडा माहराम
गुडा मांगलिया
गुडा भेर्यासिंह
गुडा मगा
गुडा पातीयां
गुडा रामा

गुडा रामता
गुडा रूपसिंघ
ईंटदड़ा मेड़तिया
केरली
केसरगढ़
करणवो
किसनपुरो
कोटडी
नाडोल
नादाणो जोधो
नीपल
पदमपुरो
पादरडी साकला
सावलतो

बाली परगने के अन्तर्गत गांव

बेरल
गुडा कल्याणसिंघ
कोट बालीया
सालराई
पुनाडीयो

कुल $38\frac{1}{2}$ गांव

रेख 37600/– रुपये (ठिकाने की वार्षिक आय)

हुकमनामा की राशि 28200/– रुपये (ठिकानेदार की गद्दीनशीनी पर राज्य को देय कर)

खिराज 3008/– रुपये (राज्य का वार्षिक कर)